आलम



और

महकपरी

नुसरत नाहीद

शाने आलम और मलकपरी

✍ नुसरत नाहीद

जाने आलम और महकपरी

लेखिका : नुसरत नाहीद,

पता : अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी कैम्पस,
कैसरबाग़, लखनऊ – 226001

प्रथम संस्करण – 2001

मूल्य : रू० 135/-

कम्प्यूटर कम्पोज़िंग
स्काई कम्प्यूटर्स
लखनऊ।

JAANE ALAM AUR MAHAK PARI
Nusrat Naheed
Amiruddaula Public Library Campus Qaisar Bagh, Lucknow-1
Rs. 135/-

उस शौक़ के नाम
जिसकी पूर्ति इस पुस्तक
के रूप में हुई।

नुसरत नाहीद

अपनी बात

काफ़ी समय से पुस्तकालय में कार्यरत होने के कारण समय-समय पर पाठकों एवं शोधकर्ताओ की रुचि और उन की माँग को समझने का अवसर प्राप्त हुआ। बहुत कुछ पाठ्य सामग्री उर्दू में है और उर्दू हर कोई जानता नहीं। हिन्दी मात्र भाषा होने के कारण सभी जानते हैं।

इसी आधार पर मैनें कलम उठाया "जाने आलम और महक परी" में मैंने वाजिद अलीशाह के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी है। संक्षिप्त इसलिय कि जितना भी लिखा जाय कम है। महलात और बेगमात से गुज़रते हुए हज़रत महल साहिबा के दाखिले महफ़िल होने के बाद से उनका व्यक्तिव आरम्भ किया है। बहुत सी पुस्तकें नज़र से गुज़रीं लेकिन हज़रतमहल के माता पिता का नाम नहीं मिला।

राजकीय अभिलेखागार से प्राप्त रजिस्टर माफी डिस्ट्रिक्ट लखनऊ के प्रष्ठ 193 से माता पिता का नाम मुझे ज्ञात हुआ। म्युटिनी टेलीग्रामस का पृष्ठ 14, जिस से बेगम के नेपाल जाने का पता मिलता है, बेगम की मृत्यु के बाद नेपाल सरकार का टेलीग्राम भी मिला यह सभी संदर्भ का कार्य करेंगे।

मैप भी संलग्न है जिस से 17 नवम्बर 1857 को मोती महल की चहारदीवारी के पास मिले अंग्रेज़ी अफ़सरान का पता चलता है। यह भीष्ण संग्राम था।

इस पुस्तक में मैंने वाजिद अलीशाह के जीवन के हर पहलू को नहीं लिया है। यह पुस्तक वाजिद अली शाह जाने आलम से आरम्भ होकर महकपरी और बिरजीस कद्र और हज़रतमहल पार्क पर समाप्त हुई है।

मैं डा० मुहम्मद शफ़ीक़, (इतिहास विशेषज्ञ) और श्रीमती शशिसिन्हा की आभारी हूं जिन्होंने समय-समय पर मेरी सहायता की। मैं ख़ुदा के आगे सर झुकाती हूँ जिसने मेरी इस पुस्तक को लिखने की आशा, अपने करम से पूरी फ़रमाई।

नुसरत नाहीद
लाइब्रेरियन / सचिव
अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी,
कैसरबाग़ लखनऊ

विषय-क्रम

1- वाजिद अली शाह जाने आलम	1-17
2- महाराजा बनारस की मेहमान नवाजी	18-25
3- जाने आलम की साहित्य सेवा	25-29
4- जाने आलम की संगीत सेवा	29-32
5- परीख़ाना (मोरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्युजिक)	33-34
6- क़ैसरबाग़	35-36
7- अहदे वाजिद अली शाह के शाइर	39-39
8- अवध की आमदनी का कम होना	40-41
9- अवध की तहसीलें	41-44
10- वाजिद अली शाह की फ़ौज व सिपाह	44-48
11- मौलाना अहमद उल्लाह शाह	48-50
12- अज़ीम उल्लाह ख़ां	50-51
13- फ़िरोज़शाह	51
14- मौलवी सरफ़राज अली शाहजहाँपुरी	51-52
15- मुंशी रसूल बख़्श काकोरवी	52-53
16- जाने आलम की अच्छाईयों पर एक नजर	53-57
17- वाजिद अली शाह की बेगमात के लिए एहकामात	57-59
18- बेगमात के नामों की सूची	59-65
19- बेगम हज़रत महल : महकपरी	66-73
20- बेगम का सफ़र : चौलक्खी कोठी से	73-82
21- नेपाल में पनाह	83-84
22- विभिन्न दार्शनिको के विचार	85-86

23- म्युटिनी टेलीग्राम्स 1859 पृष्ठ 14	87
24- रजिस्टर आफ माफी आर–रेन्ट फ्री होल्डिंग्स इन विच इन्वेस्टीगेशन हैज बीन कम्पिलीटेड इन डिस्ट्रिकट आफ लखनऊ नं. 193	88
25- मैप : आफ 17 नवम्बर 1857	89
26- मिर्जा रमज़ान अली, बिरजीस क़द्र	90-95
27- बेगम हज़रत महल पार्क लखनऊ	96-101
28- चित्र	
29- संदर्भ पुस्तकें	



वाजिद अलीशाह जाने आलम

(13 फरवरी 1847 से 7 फरवरी 1856)

अवध के पाँचवें व अंतिम बादशाह वाजिद अलीशाह का जन्म 10 ज़ीक़ाद 1237 हिजरी अर्थात् 30 जुलाई 1822 ई. को लखनऊ में हुआ था। उनका पूरा नाम मिर्ज़ा क़ैसरज़माँ वाजिद अली शाह था। उनकी माता मलिका किश्वर उनके पिता अमजद अली शाह की ख़ास महल थीं। वाजिद अली शाह के जन्म के समय कुछ ज्योतिषियों ने ऐसी संदिग्धात्मक भविष्यवाणी की थी कि बालक के कुछ नक्षत्र उसके लिए अशुभ प्रतीत होते हैं और इसकी क़िस्मत में जोगी होना लिखा है। इस स्थिति से बचने का उपाय उन्होंने यह बताया कि बालक को उसकी हर सालगिरह पर जोगी बनाया जाये। ज्योतिषियों की बात मानते हुए वाजिद अली शाह को उनकी छठी के अवसर पर उनकी माँ मलिका किश्वर ने उसको जोगियाना वस्त्र पहनाये और बाद में उनकी हर सालगिरह पर उनको केसरिया जोड़ा पहनाया जाता था। यह रस्म महल के अन्दर प्रत्येक वर्ष मनायी जाती थी परन्तु इस अवसर पर कोई उत्सव नहीं मनाया जाता था। यह केवल महल के अन्दर की पारिवारिक बात थी जिसका आम लोगों में कोई ज़िक्र नहीं था।

वाजिद अली शाह का प्रारंम्भिक जीवन शाही परिवार के एक साधारण राज कुमार की भाँति आरम्भ हुआ था। उन्होने फारसी की प्रारम्भिक शिक्षा लेने के अतिरिक्त घुड़ सवारी और निशानेबाजी का भी प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उनकी शिक्षा

दीक्षा के लिए उस समय के योग्य विद्वान कवि तथा मौलवी इमदाद हुसैन ख़ां साहब को प्रशिक्षक नियुक्त किया गया था जो उनके पिता अमजद अली शाह के भी गुरु रह चुके थे और जिन्होंने बाद में बाप तथा बेटे दोनों बादशाहों के शासनकाल मे राज्य की विज़ारत भी सँभाली थी। बाल्यकाल से ही वाजिद अली शाह ने श्रृंगारिक काव्य रचनाओं का सृजन करना प्रारम्भ कर दिया था। धीरे धीरे उनका काव्य चिन्तन और विवेक का रूप धारण करने लगा। वाजिद अलीशाह को बचपन से ही मौसीक़ी का बेहद शौक़ था। संगीत के प्रति रुझान, उनकी स्वाभाविक और जन्मजात प्रकृति थी, यहाँ तक कि वह अपना सबक़ भी ताल के साथ याद कर लेते थे।

वाजिद अली शाह का जन्म बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के शासनकाल में हुआ था, जब वह पाँच साल के हुए तो गाज़ीउद्दीन हैदर की मृत्यु हो गयी और उनके बाद उनके पुत्र नसीरुद्दीन हैदर बादशाह बने।

वाजिद अली शाह के एक बड़े सौतेले भाई थे जिनका नाम मिर्ज़ा मुस्तफ़ा अली हैदर ख़ां था। वह अमजद अली शाह की एक खुर्द(छोटी) बेगम सुल्तान महल "इम्तियाजुन्निसा" के पुत्र थे तथा अमजद अली शाह के वह ज्येष्ठ पुत्र थे। अमजद अली शाह किसी कारण वश उनसे नाराज़ रहते थे। अतः उन्होंने यह कह कर उनको अपनी अवैध सन्तान क़रार दे दिया था कि जब मैंने मुस्तफ़ा अली की माँ से ब्याह किया था, तो मुस्तफ़ा डेढ़ वर्ष का था, इस प्रकार मुस्तफ़ा अली राजगद्दी के उत्तराधिकार से वंचित कर दिये गये थे।

6 जून 1842 को बादशाह अमजद अली शाह ने अपने दूसरे पुत्र वाजिद अली शाह को अपने राज्य का वली अहद मनोनीत किया। मनोनीत हो जाने पर वाजिद अली की रुचि शेरो–शाइरी व संगीत की ओर अधिक बढ़ती गयी। लखनऊ की शाइरी में उस समय नज़ाकत, चंचलता और श्रंगार रस की प्रमुखता थी। आतिश, नासिख़, शौक़, रिन्द आदि तत्कालीन प्रसिद्ध शाइर थे। वाजिद अली शाह पर भी इस शाइरी का रंग चढा और वह आतिश के शिष्य बन गये। उन्होंने अपना उप नाम "अख़्तर" रख्खा और इसी नाम से वे शाइरी करने लगे। शाहे अवध बनने के पूर्व वाजिद अली शाह को प्रेम, शाइरी और सगीत का अच्छा ख़ासा अनुभव प्राप्त हो चुका था।

13 फ़रवरी 1847 ई. को शाम 5 बजे के लगभग अमजद अली शाह की मृत्यु हो गयी। उसी दिन रात में 9 बजकर 35 मिनट पर वाजिद अली शाह अवध के सिंहासन पर विराजमान हुए। इस अवसर पर उन्होंने "अबुल मुज़फ़्फ़र, नासिरुद्दीन, सिकन्दरजाह, बादशाहे आदिल, कैसरजमाँ, सुलताने आलम, मिर्ज़ा, वाजिद अली शाह बहादुर बादशाह" का ख़िताब ग्रहण किया। उस समय उनके शिक्षक अमीनुद्दौला वज़ीर के पद पर थे।

गद्दी पर बैठते ही वाजिद अली शाह ने सबसे पहले शाही फ़ौजों को पुनर्गठित किया और उसे विभिन्न रिसालेदारों के आधीन, विभाजित करके उसकी नियमित परेड का प्रबंध किया। रिसालों के नाम बादशाह ने बाँका, तिरछा, घनघोर आदि रख्खे और पलटनों के नाम नादरी अख़्तरी आदि रख्खे

बादशाह स्वयं घोड़े पर सवार होकर यह परेड देखने जाते थे। कुछ दिन बाद उन्होंने औरतों की भी एक छोटी फौज बनायी, जिसे अभ्यास (परेड) आदि का भी उचित प्रशिक्षण दिया गया। (गदर के ज़माने में स्त्रियों की इसी पल्टन ने बेगम हज़रत महल के नेतृत्व में स्वाधीनता का युद्ध लड़ा था) शाही निवास स्थान छत्तर मंज़िल के पास स्थित, विशाल मैदान में यह परेड सम्पन्न होती थी। बादशाह यह कार्य जिस तत्परता से करते थे, वह अंग्रेजों को नागवारः था। अतः रेज़ीडेन्ट कर्नल रिचमेण्ड ने शाही हकीम को अपनी ओर मिला कर उसके द्वारा वाजिद अली शाह की माँ मलिका किश्वर को यह सन्देश भिजवाया कि बादशाह का इतना कार्य करना उनके स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं है। इससे उन्हें तेज़ बुख़ार होने की आशंका है। फलत. राजमाता मलिका किश्वर ने दबाव डाल कर वाजिद अली शाह से परेड आदि कराने का कार्य बन्द करवा दिया। निराश होकर बादशाह ने राज्य के प्रबंध का भार अपने मंत्रियों पर छोड़ दिया और स्वयं शाइरी, नाटक, संगीत, नृत्य आदि की ओर उन्मुख हो गये। उनके दरबार में मंत्रियों के स्थान पर औरतों को भरती किया जाने लगा, आनन्द मंडलियों के आयोजन होने लगे और शाइरों का भरपूर स्वागत किया जाने लगा।

बादशाह द्वारा शासन प्रबंध का भार मंत्रियों के हाथों में सौंप देने तथा फ़ौज की दुरुस्ती आदि की ओर से ध्यान हटा लेने पर अवध राज्य की स्थिति संतोषजनक न रही। सर्वत्र अराजकता फैलने लगी। यद्यपि अंग्रेज़ ही इस ख़राब स्थिति के जिम्मेदार थे तो भी उन्होंने इसका दायित्व वजीर अमीनुद्दौला

पर डाल दिया और 9 जुलाई 1847 को उन्हें विज़ारत से हटवा दिया। इसके बाद 5 अगस्त, 1847 को सैयद अली नकी ख़ा को "हुज़ूरे आलम" ख़िताब देकर वज़ीर नियुक्त किया गया।

सैयद अली नकी ख़ां एक अत्यंत चालाक व्यक्ति था। वाजिद अली शाह से उसकी पहली भेंट शाह के युवराजत्व काल में एक डेरे दार तवाइफ़ के कोठे पर हुई थी। जिससे वाजिद अली शाह काफ़ी प्रभावित थे, उन्होंने तख़्तनशीनी के पूर्व अपनी "आनन्द सभा" बाग और जो महल बनवाया था, वह अली नकी ख़ां की ही देखरेख में बनवाया था।

वज़ीर नियुक्त हो जाने पर अली नकी ख़ां ने बड़े कूटनीतिक ढंग से कार्य करना प्रारम्भ किया। एक ओर तो उन्होंने रेज़ीडेन्ट को अपने पक्ष में किया और अंग्रेजों से मिल कर उनकी इच्छानुसार बादशाह के विरुद्ध कुचक्र और षड्यंत्र रचना प्रारंभ किया तथा दूसरी ओर बादशाह से भी अपने संबंध मधुर बनाये रखने तथा उन पर अपना विश्वास जमाए रखने के लिए उन्होंने अपनी लड़की रौनक़ आरा बेगम का विवाह बादशाह से कर दिया जिसके फलस्वरूप दरबार में हुज़ूरे आलम का प्रभाव और अधिक बढ़ गया।

पंजाब में सिक्खों को पराजित करने के बाद वहां से कलकत्ता जाते समय गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिंग ने कानपुर में पड़ाव किया। वाजिद अली शाह गवर्नर जनरल का स्वागत करने के लिये नवम्बर 1847 के प्रारम्भ में कानपुर पहुँचे। अगले दिन दोनों लोगों की भेंट हुई जिसमें बादशाह ने गवर्नर जनरल से लखनऊ चलने का अनुरोध किया जिसे स्वीकार करके

गवर्नर जनरल लखनऊ आये जहाँ वाजिद अली शाह तथा रेज़ीडेन्ट कर्नल रिचमेण्ड ने उनका भव्य स्वागत किया। बादशाह ने उन्हें बहुमूल्य उपहार भी प्रदान किये। अवध से प्रस्थान करते समय गर्वनर जनरल ने शाहे अवध से कम्पनी सरकार की मित्रता के निष्ठापूर्ण निर्वाह का आश्वासन दिया और साथ ही यह चेतावनी भी दी कि यदि अवध की बिगड़ती स्थिति का सुधार दो वर्ष में न किया गया तो कम्पनी की सेनायें अवध का प्रबंध अपने हाथों में सँभाल लेंगी। इस पर वाजिद अली शाह ने उन्हें अवध की दशा सुधारने का आश्वासन दिया।

इसके बाद 23 नवम्बर 1847 का लिखा हुआ गवर्नर जनरल का एक पत्र फिर आया जिसमें उन्होंने अवध की विगड़ती हुई दशा पर गहरा असंतोष प्रकट करते हुए बादशाह पर आरोप लगाया कि कम्पनी सरकार के बार–बार चेतावनी व सुझाव देने पर भी राज्य की व्यवस्था में उनके द्वारा कोई सुधार नहीं किया गया है जबकि वास्तविक्ता यह थी कि न तो कम्पनी सरकार ने सुधार करने का कोई सुझाव ही दिया था और न कोई योजना ही बनायी थी अपितु यदि बादशाह राज्य की व्यवस्था हेतु कोई आवश्यक क़दम उठाते भी थे, तो रेज़ीडेन्सी की तरफ़ से कोई न कोई अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता था जिससे अवध की स्थिति में सुधार न हो पाया।

वाजिद अली शाह गवर्नर जनरल का पत्र पाते ही वजीर अली नक़ी खां के साथ मिल कर अवध में सुव्यवस्थित शासन प्रबंध के लिए एक नयी योजना बनाने की तैयारी में जुट गये। अपनी योजना में उन्होंने नवाबी पद्धति से अवध की

शासन व्यवस्था चलाने की तुलना में ब्रिटिश प्रणाली को अपनाने पर ज़ोर दिया। रेज़ीडेन्ट कर्नल रिचमेण्ड के माध्यम से यह योजना स्वीकृति के लिए गवर्नर जनरल के पास कलकत्ता भेज दी गयी।

उधर 12 जनवरी 1848 को स्वेच्छा से त्यागपत्र देकर जनरल लॉर्ड हार्डिंग ने कलकत्ता से इंग्लैण्ड के लिए प्रस्थान किया और उसी दिन कलकत्ता पहुंचकर लॉर्ड डल्हौज़ी (वास्तविक नाम जेम्स ऐन्ड्रयू ब्राउन रैम्से) ने गवर्नर जनरल का पद भार ग्रहण कर लिया।

वजिद अली शाह की योजना जब लॉर्ड डल्हौज़ी के पास स्वीकृति हेतु पहुंची तो उन्होंने उसे बिना देखे ही अपने विदेशी सचिव हेनरी ईलियट को उसे अस्वीकार करने का निर्देश दे दिया क्योंकि इस नये महत्वाकांक्षी गवर्नर जनरल की नीति बचे हुए भारतीय राज्यों के हड़पने की थी।

अपनी योजना अस्वीकृत हो जाने पर वाजिद अली शाह बहुत उदास हो गये। उनकी प्रवृति राजकाज से हट कर नृत्य और शाइरी की ओर उन्मुख हुई। आगे चल कर उन्होनें इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी बेगमों के रहने के लिए मई 1848 में कैसरबाग़ की नीव डाली और इससे लगे बहुत से दु–मंज़िले भवनों का निर्माण प्रारम्भ किया, जिसमें उनकी बेगमात रह सकें अब तक बादशाह का प्रधान निवास स्थान छत्तर मंजिल था। क़ैसरबाग का निर्माण हो जाने के बाद वह स्थाई रूप से यहीं रहने लगे इसके निमार्ण में 80 लाख रूपये खर्च हुए थे और सन 1850 में यह बन कर तैयार हो गया था।

इसके बीच में बादशाह ने एक बारादरी भी बनवायी जिसमे उनका दरबार लगता था तथा सभाएं होती थीं। यह बारादरी मूल रूप से गुलाबी पत्थर से बनी थी। मुहर्रम के ज़माने मे इसमें मातम की मजलिसें होती थीं जिसकी वजह से इसे कसरुल–बुका(मातम का भवन) भी कहा जांने लगा। कुछ समय बाद मातम के जमाने में, इस रंगीन पत्थर की बारादरी को चूने की क़लई देकर सफ़ेद कर दिया गया था। बारादरी के सामने पूरब और पश्चिम की तरफ़ दो विशाल द्वार बनाये गये थे जिनके निमार्ण में एक लाख रुपये ख़र्च होने के कारण यह लख्खी दरवाज़े कहलाये। बारादरी तथा यह दरवाज़े आज भी देखने योग्य हैं। बारादरी का प्रयोग आज भी जलसः घर के रूप में होता है। युवतियों को संगीत, नृत्य तथा गायन की शिक्षा देने के लिए बादशाह ने एक "परीख़ाना" भी बनवाया था जो वर्तमान भातखण्डे संगीत महाविद्यालय के स्थान पर स्थित था।

नवम्बर 1848 में रेज़ीडेन्ट कर्नल रिचमेण्ड अपने पद से निवृत्त हुए और 11 जनवरी 1849 को कर्नल सर विलियम हेनरी स्लेमेन रेज़ीडेन्ट नियुक्त हुए। इस बीच की अवधि मे सहायक रेज़ीडेन्ट मेजर आर. डब्ल्यू. बर्ड ने कार्यवाहक रेज़ीडेन्ट के रूप में कार्य सम्भाला। उधर महत्वाकांक्षी गवर्नर जनरल लॉर्ड डल्हौज़ी बचे हुए भारतीय राज्यों को हड़प कर अंग्रेजी राज्य में मिलाने की योजना बना रहे थे। वह चाहते थे कि संपूर्ण भारत में अंग्रेज़ी राज्य पूर्ण रूप से हो जाये। वह दिल्ली से मुग़ल सम्राट बहादुरशाह ज़फ़र तथा लखनऊ से शाहे अवध वाजिद अली शाह को पूर्ण रूप से हटा कर इन क्षेत्रों पर

अग्रेज़ी शासन लागू करना चाहते थे। कलकत्ता आने के बाद उन्होंने सर्वप्रथम अवध के हड़पने की योजना बनायी। अत रेजीडेन्ट कर्नल स्लेमेन ने आते ही डल्हौज़ी के निर्देशानुसार अवध में सीधे हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने शाहे अवध के दरबार में अपनी मर्ज़ी के मंत्रियों को नियुक्त कराया तथा बादशाह के वफ़ादार एवं निकटवर्ती मंत्रियों को दरबार से हटा दिया। इस तरह से वह अवध के कार्यों में सीधा हस्तक्षेप करके राज्य की स्थिति को और भी ख़राब करने में पूरी तरह से जुट गये।

इन दुःखद परिस्थितियों से वाजिद अली शाह बहुत निराश, व्याकुल एवं उद्विग्न हो गये और इस परेशानी को छिपाने के लिए उन्होंने नृत्य एवं संगीत का सहारा लिया, स्वय एक उच्चकोटि के शाइर होने के कारण उनके दरबार मे शाइरों, अच्छे क़व्वालों, तवाइफ़ों तथा संगीतज्ञों का झमघट लगा रहता था। अपना ग़म भुलाने के लिए बादशाह ने शाइरो को प्रोत्साहित किया और "अख़्तर पिया" के नाम से उन्होने ठुमरी का अविष्कार किया। उनके संरक्षण में नृत्य और संगीत के अतिरिक्त रास लीलाएं एवं 'रहस्य' की भी शुरूआत हुई। उन्होनें राजनीतिक परेशानियों के कारण हरम में अपनी पत्नियों की संख्या बढा दी।

नवम्बर 1849 से फ़रवरी 1850 तक साढ़े तीन महीने के बीच में रेज़िडेन्ट कर्नल स्लेमन ने अवध राज्य का दौरा किया जिसमें उन्होंने बहराइच, बलरामपुर, प्रयागपुर, गोरखपुर, फैजाबाद, सुल्तानपुर, भदरी, रामपुर, साती, सीतापुर, ओएल,

महोबा, महमूदाबाद, फ़तेहपुर आदि स्थानों का शाही ख़र्च से भ्रमण किया और पूरी रिपोर्ट दो जिल्दो में तैयार करके गवर्नर जनरल के पास भेज दी, जिसमें शाही प्रशासन की कमज़ोरी, ज़मींदारों की सरकशी एवं उनके आतंक और अत्याचार की झूठी कहानी, प्रजा की शिकायत आदि बातें विस्तार से और झूठी लिखी गयी थीं। ऐसा इस लिये किया गया था कि बादशाह को निकम्मा साबित करके अवध राज्य की ज़ब्ती तथा अंग्रेज़ी राज्य में उसका विलय शीघ्र ही हो सके।

लॉर्ड डल्हौज़ी और कर्नल स्लेमन तो अवध को जब्त करके उसे अंग्रेजी राज्य में मिलाने के लिए प्रयत्नशील थे, जब कि वाजिद अली शाह अंग्रेज़ों की मित्रता पर अटूट विश्वास करके अपनी उदासी को दूर करने के लिए, नाट्य मंडलियो एवं 'रहस्यो' में व्यस्त रहते थे। क़ैसरबाग उनकी गतिविधियो का प्रमुख केन्द्र बन गया था। वर्ष में एक बार वहां एक शानदार मेला होता था जिसमें आम जनता भी सम्मिलित होती थी। वाजिद अली शाह ने श्री कृष्ण की रास–लीला के ढर्रे पर नाटक के रूप में 'रहस्य' का प्रचलन किया, जिसमें वह कन्हैया बनते थे, उनकी बेगमें गोपियां बनती थीं और इस प्रकार से नृत्य और संगीत की महफिल जमती थी, कभी कभी बादशाह जोगी बनने का भी नाटक करते थे। मोतियों को जला कर भभूत बनायी जाती थी जिसे वह अपने शरीर में लगाते थे और गेरुआ वस्त्र धारण करके जोगी बन जाते थे। इस प्रकार बादशाह राज्य कार्य का प्रबंध अपने मंत्री अली नक़ी ख़ां के सुपुर्द करके स्वयं निश्चिन्त होकर नित्य प्रतिदिन अपनी शाइरी

तथा 'रास–लीला' में डूबे हुए थे। अंग्रेजों पर उन्हें पूर्ण विश्वास था कि वे ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे जिससे उनकी गद्दी ख़तरे मे पड़ जाये।

उधर अवध में पूरी तरह अव्यवस्था फैला देने के उपरान्त रेज़ीडेन्ट कर्नल स्लेमन ने गवर्नर जनरल लॉर्ड डल्हौज़ी को लिख दिया कि कम्पनी को अब अवध का शासन भार स्वयं अपने हाथों में ले लेना चाहिए क्योंकि यहां रिश्वतख़ोरी और भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है और बादशाह वाजिद अली शाह को गाने बजाने तथा नाच रंग से इतनी फुर्सत कहां है कि वह इस ओर ध्यान दे सकें। इस प्रकार कुशासन के बहाने अंग्रेज़ों ने अवध को अपने राज्य में मिलाने की चाल चली परन्तु संयोग से 1854 में रेज़ीडेन्ट कर्नल स्लेमन का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से वह लखनऊ छोड़ने के लिए विवश हो गये। अस्वस्थ होकर वह जुलाई 1854 में इंग्लैण्ड को रवाना हो गये। उनके जाने पर रेज़ीडेन्सी के होजेस नामक एक अंग्रेज़ अधिकारी ने 5 दिसम्बर 1854 तक कार्यवाहक रेज़ीडेन्ट के रूप में कार्य किया। 5 दिसम्बर 1854 को गवर्नर जनरल के आदेश से जनरल जेम्स आउटरम ने स्थायी रेज़ीडेन्ट के पद का कार्य भार सम्भाल लिया। उन्होंने कर्नल स्लेमन द्वारा तय्यार की गयी रिपोर्ट को अपनी टिप्पणियों सहित 15 मार्च 1855 को गवर्नर जनरल के सचिव को भेज दिया।

जनरल आउटरम की रिपोर्ट के आधार पर लार्ड डल्हौज़ी अवध को ज़ब्त करने की नीति निर्धारित करने में जुट

गये। 15 जून 1855 को उन्होंने एक मिनियूट (Minute) तय्यार किया, जिसमें उन्होंने एक नई संधि स्वीकार करने के लिए वाजिद अली शाह पर ज़ोर दिया। इस नई संधि के अनुसार ब्रिटिश सरकार और अवध के नवाबों के साथ हुई पिछली सभी संधियों को अमान्य घोषित कर दिया तथा आदालतों, सेना का संचालन कम्पनी के हाथों में सौंपना दिया। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल ने बादशाह को गद्दी से हटा कर उनके समस्त अधिकारों को छीन लेने का कार्य किया और करों से प्राप्त होने वाले लाभ पर कम्पनी के अधिकार को सुरक्षित कर दिया। लॉर्ड डल्हौज़ी ने 3 जूलाई 1855 को ब्रिटिश सरकार को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपने अनुभवों तथा अवध की ज़ब्ती के दायित्व को स्वीकार करते हुए देश की सेवा करने का अनुरोध किया। इस पत्र को ईस्ट इंडिया कम्पनी के निदेशको की एक सभा में प्रस्तुत किया गया। जहाँ 21 नवम्बर 1855 को लार्ड डल्हौज़ी के प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया गया और उन्हें अवध की जब्ती की अपनी योजना को क्रियान्वित करने मे प्रयत्नशील रहने का आदेश दे दिया गया।

जनवरी 1856 के प्रारम्भ में रेज़ीडेन्ट जनरल आउटरम कलकत्ता गये और वहाँ से गवर्नर जनरल द्वारा अवध के ज़ब्ती का आदेश लेकर शीघ्र ही लखनऊ लौट आये। 30 जनवरी, 1856 को जनरल आउटरम ने शाही दरबार के सभी मंत्रियों को रेजीडेन्सी में आमंत्रित किया। मंत्रियों के वहाँ पहुँचने पर जनरल आउटरम ने वज़ीर अली नक़ी ख़ां को बुलाकर उन्हें गवर्नर जनरल का आदेश सुनाया कि कम्पनी सरकार ने अवध

राज्य को अपने अधिकार में कर लेने का निश्चय कर लिया है। किसी सम्भावित उपद्रव को रोकने के लिए सैनिकों के शक्तिशाली दस्ते को कानपुर से लखनऊ की तरफ़ बढ़ने का आदेश दिया जा चुका है। इस नई व्यवस्था के अनुसार अवध पर कम्पनी का शासन रहेगा और बादशाह को कुल 15 लाख रुपये की वार्षिक पेन्शन मिलती रहेगी जिसमें 12 लाख रुपये उनके व उनके परिवार के लिए तथा 3 लाख रुपये उनके मुलाज़िमों के लिए होंगे। वज़ीर इस आदेश को सुन कर चकित रह गये । उन्होंने कहा कि बादशाह इस नयी संधि पर कभी भी अपने हस्ताक्षर नहीं करेंगे। वज़ीर ने अब तक के नवाबों की अंग्रेजों के प्रति वफादारी की चर्चा की, किन्तु जनरल आउटरम ने शाही पक्ष की कोई भी बात सुनना अस्वीकार कर दिया। फलतः वज़ीर ने सारी स्थिति आकर वाजिद अली शाह को बतायी। वाजिद अली शाह कम्पनी के इस कार्य को सुनकर बहुत हैरान एवं निराश हुए। पहली फरवरी 1856 को उन्होंने रेज़ीडेन्ट को एक पत्र लिखकर अपनी स्थिति तथा अवध में सुधार की बात स्पष्ट करने का प्रयत्न किया, किन्तु रेज़ीडेन्ट ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और इस नई व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए तीन दिन का समय दिया जो किसी भी शर्त पर आगे नहीं बढ़ायी जा सकती थी।

जब जनरल आउटरम किसी भी तरह बादशाह से हस्ताक्षर करा लेने में सफल नहीं हुए तो उन्होंने वज़ीर अली नकी ख़ां से अनुरोध किया कि वह किसी भी तरह बादशाह से हस्ताक्षर करवायें। इसके साथ ही बादशाह को चेतावनी भी दी

गयी कि यदि वह आसानी से हस्ताक्षर नहीं करेंगे तो उन्हे हस्ताक्षर करने के लिए जबरन विवश किया जायेगा। इस पर भी यदि वे नहीं मानेंगे तो उनके तोपख़ाने पर कब्ज़ा कर लिया जायेगा। उनके सारे कर्मचारी बन्दी बना लिए जायेंगे। जमींदारो तथा जागीरदारों की भूमि ज़बरदस्ती छीन ली जायेगी। जब बादशाह ने रेजीडेन्ट की यह चेतावनी भी अनसुनी कर दी तो उनकी माता मलिका किश्वर को एक लाख रुपये वार्षिक पेन्शन देने का लालच देकर उनसे बादशाह से इस नयी व्यवस्था पर हस्ताक्षर कराने का अनुरोध किया गया, किन्तु मलिका किश्वर ने भी अस्वीकार कर दिया।

इस बीच बादशाह की रज़ामंदी से और वज़ीर अली नक़ी ख़ां ने अंग्रेज़ों को प्रसन्न रखने की दृष्टि से अवध की सेना को निःशस्त्र कर दिया। तोपों को महल से हटा दिया। बादशाह ने अपने मातहतों को आदेश दिया कि वह अवध की ओर बढ़ती हुई कम्पनी की सेनाओं के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करें। ऐसा इसलिए किया गया जिससे कम्पनी को अन्यायपूर्ण कार्यों का कोई बहाना न मिल सके।

4 फरवरी 1856 को प्रातः 8 बजे रेजीडेन्ट जनरल आउटरम बादशाह से मिलने उनके महल 'ज़र्द कोठी' पहुँचे। वहाँ उन्होंने बादशाह के समक्ष यह घोषणा की कि पिछली सभी संधियां समाप्त हो गयी हैं और सात दफाओं की एक नई संधि प्रस्तुत है जिसके अनुसार बादशाह को अपने लिए 12 लाख रुपये वार्षिक पेन्शन, उनके मुलाज़िमों के लिए 3 लाख रुपये वार्षिक पेन्शन तथा बादशाह को रहने के लिए 7 मकान

मिलेंगे। सम्पूर्ण दीवानी तथा सैनिक शासन सदा के लिए ईस्ट इडिया कम्पनी को सौंप दिया जायेगा। इस सुलहनामे के साथ गवर्नर जनरल का एक पत्र भी बादशाह के नाम था। उसे पढ़ कर बादशाह ने एक ठंडी आह खींची और संधि पर हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर दिया।

जब बादशाह ने संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये तो आउटरम ने उन्हें समझाना शुरु किया। उन्होंने कहा कि दिल्ली के बादशाह को हम सिर्फ़ एक लाख रुपये वार्षिक पेन्शन दे रहे हैं किन्तु आपको 12 लाख रुपये तथा मुलाज़िमों को 3 लाख रुपये वार्षिक पेन्शन देने को तैयार हैं। आपके रहने के लिए शाह मंज़िल, मुबारक मंज़िल, खुशीर्द मंज़िल, सिकन्दर बाग, बादशाह बाग़, रमना कोठी तथा दिलकुशा कोठी, यह सात मकान दे रहे हैं, आपके ख़ानदान की तनख़्वाह कम्पनी अपने ऊपर ले रही है। जब तक आप जीवित रहेंगे आपका "बादशाह" का ख़िताब रहेगा, उसके बाद यह ख़िताब समाप्त हो जायेगा। आपके उत्तराधिकारी को सिर्फ़ 12 लाख रुपये वार्षिक पेन्शन मिलेगी। मुलाज़िमों का 3 लाख रुपया नहीं मिलेगा। आपकी हुंकूमत मौज़: बीवापुर पर रहेगी किन्तु फाँसी की सज़ा नहीं दे सकेंगे।

बादशाह चुपचाप सारी बातें सुनते रहे। संधि पर अपने हस्ताक्षर करना अस्वीकार करते हुए उन्होंने कहा, 'संधि बराबर वालों में होती है। आउटरम ने बडी चेष्टा की कि बादशाह सधिपत्र पर हस्ताक्षर कर दें और स्वयं राज्य छोड़ दें, ताकि संसार के सामने ब्रिटिश नैतिकता का ऊंचा आर्दश बना रहे, किन्तु वह असफल रहे। 16 फ़रवरी 1856 की शाम को 4 बजे

रेजीडेन्ट ने वज़ीर अली नक़ी ख़ा को बुलाया और उन पर दबाव डाला कि किसी प्रकार 'संधिपत्र' पर बादशाह के हस्ताक्षर करवायें, परन्तु वज़ीर इस मामले में अपना सब प्रयत्न कर चुके थे, वह बिना अनुमति के 'संधिपत्र' पर बादशाह की मुहर तक लगा चुके थे, उन्होंने कहा कि मैं काफ़ी चेष्टा कर रहा हूं कि बादशाह राज़ीनामे पर हस्ताक्षर कर दें। इस पर रेज़ीडेन्ट ने वज़ीर की सराहना की और कहा कि वह जानते हैं कि वे किस कठिनाई से काम कर रहे हैं, पर लाज़िम है कि 7 तारीख़ को 9 बजे दिन तक उन्हें जवाब मिल जाये।

7 फरवरी 1856 को प्रातः आठ बजे आउटरम के पास बादशाह का एक पत्र पहुंचा कि वह संधि पर हस्ताक्षर नही करेंगे। इस सूचना को पाते ही आउटरम आयुक्त के रूप मे नगर और सचिवालय का चार्ज लेने के लिए आगे बढ़े। नगर बैंकरों के हवाले कर दिया गया जिन्होंने तुरन्त ही कोतवाल की सहायता से अपने कार्यालय में काम करना प्रारम्भ कर दिया। दोपहर 12 बजे तक अन्य सभी विभाग जो शाही मंत्रियों और राज्याधिकारियों के पास थे, आउटरम ने अपने हाथ में ले लिए और यह घोषणा कर दी कि अवध की सरकार ने अपने राज्य को सदा के लिए ईस्ट इंण्डिया कम्पनी को समर्पित कर दिया है। इसी के साथ अवध में नवाबी शासन का अन्त हो गया। जनरल आउटरम अवध के चीफ़ कमीश्नर नियुक्त हो गये और अवध में दो वर्षों के लिए सैनिक प्रशासन लागू हो गया।

इस प्रकार बड़े शान्तिपूर्ण ढंग से अवध राज्य का कम्पनी के राज्य में क़ब्जः हो गया। इसी माह में कुछ दिन बाद गवर्नर

जनरल लॉर्ड डल्हौज़ी भी अपने पद से निवृत हो गये और उनके स्थान पर लॉर्ड कैनिंग (पूरा नाम चार्ल्स जॉन कैनिंग) गवर्नर जनरल नियुक्त हुए। 6 मार्च 1856 को लॉर्ड डल्हौज़ी ने पानी के जहाज़ द्वारा इंग्लैण्ड को प्रस्थान किया जहां पहुंचने के चार वर्ष बाद 19 दिसम्बर 1860 को उनकी मृत्यु हो गयी।

वाजिद अली शाह को अब भी ब्रिटिश सरकार की मित्रता पर भरोसा था। अतः उन्होंने यह निश्चय किया कि सबसे पहले वे कलकत्ता जाकर गवर्नर जनरल से मिलेंगे और उन्हें अपनी वफादारी और बेगुनाही का सबूत देते हुए उनसे अपना राज्य पुनः प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। यदि वहां वे इस कार्य में सफल नहीं होते हैं तो वे इस काम के लिए मलिका विक्टोरिया से फरियाद करने के लिए इंग्लैण्ड भी जायेंगे। ऐसा निश्चय कर के उन्होंने अपने परिवार तथा ख़ास खास मुलाज़िमों के साथ शनिवार 13 मार्च 1856 को रात आठ बजे बड़ी मजबूरी और बेकसी के आलम में अपने प्रिय शहर लखनऊ को छोड दिया। अगले दिन 14 मार्च को वे कानपुर पहुचे जहां से वह अपने एक अंग्रेज़ व्यापारी मित्र ब्रैडन के यहा ठहरे। इस यात्रा में भूतपूर्व सहायक रेज़िडेन्ट मेजर बर्ड भी कम्पनी की सेवा छोड़ कर नवाब के साथ आ गये थे। कानपुर मे एक माह रूकने के बाद वाजिद अली शाह ने वहां से आगे प्रस्थान किया और इलाहाबाद और गोपीगंज होते हुए वह बनारस पहुचे। वहां के राजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह ने उनका भव्य स्वागत किया और उन्हें शहर में बनी हुई दो मंजिला 'नदेसर कोठी' में ठहराया।

महाराजा बनारस की मेहमान नवाज़ी पर कहे गये
वाजिद अली शाह "अख़्तर" के अशआर

बनारस का राजा अजब नेक था,
हज़ारों में, लाखों में वह नेक था।
मकां उसने पहले किया था दुरुस्त,
सभों की तबिय्यत हुई ख़ूब चुस्त।
अजब उसकी कोठी बहारे इरम,
ज़मीं पर मगर थी फ़लक से बहम।
सजावट, परीज़ाद, कमरे लतीफ़,
मगर ऐन गर्मी में फ़स्ले ख़रीफ़।
तसावीरे शाहाने माज़ी अजब,
नज़र आता था, बोलती है यह अब।
हमारी भी थी नस्ब तस्वीरे नेक,
नज़र आगयी, सब हसीनों में एक।
किया दूर से झुक के उसने सलाम,
पुकारा यह दरबान, ऐ नेक नाम।
ये सुलताने आलम सलामत रहें,
यह शह जाने आलम सलामत रहें।
हुवा हुक्मे अहज़ार, बैठा जवां,
कहीं की कहीं अर्ज़ की दास्तां।
हिदाया बहुत ख़ूब, माकूल सब,
जवाहर की भी एक कश्ती अज़ब।
वह मालाए दुर, बेबहा साफ़ साफ़,
जो कहता था तश्ख़ीस रखिये मुआफ़।
वह पशमीने की कश्तियां तीन–चार,

तो हर क़िस्म के पारचे बेशुमार।
वह सब कश्तियां, ऐक ऊपर पचास,
जो की पेशकश, आयीं वो मेरे पास।
अ़जब सर्द कोठी थी इस माह की,
सुकूनत हक़ीक़त में थी शाह की।
हर एक सू बिछे थे पलंगे नफ़ीस,
न दो तीन थे बल्कि थे बीस तीस।
हर एक लश्करी से वह मिलकर चला,
बड़ा हौसला था बड़ा हौसला।
मुबल्लिग़ तसद्दुक़ को भेजे हज़ार,
कहा, हो निसारे, प–ए, शहरे यार।
अ़जब लुत्फ़ से पंद्रह दिन रहे,
कि कुछ ऐशे–रफ़तः भी याद आ गये।

(मजमूअ़–ए–शेव–ए–फ़ैज)

कुछ दिनों तक 'नदेसर कोठी' में विश्राम करने के बाद, जाने से पहले वाजिद अली शाह ने विश्वनाथ मंदिर जाकर वहाँ नित्य प्रातः शहनाई बजाने का प्रबन्ध किया और उसका ख़र्च अपने ज़िम्मे लिया।

बनारस से कलकत्ता तक यात्रा मलिका किश्वर और खास महल ने डाकगाड़ी से की और बाक़ी लोगों को लेकर मैकलायेड स्टीमर द्वारा नवाब, गंगा नदी के रास्ते रवाना हो गये, उनके साथ 110 लोग थे। 13 मई 1856 को यह क़ाफ़िला कलकत्ते पहुँचा जहाँ से 6 मील दक्षिण में मटिया बुर्ज नामक इलाक़े में वाजिद अली शाह ने दो हज़ार रुपये मासिक किराये

पर महाराज वर्द्धमान की कोठी ले ली और उसी में रहने का प्रबन्ध किया। वाजिद अली शाह के साथ उनकी कई बेगमात मुसाहिब, गायक, विद्वान और कलाकार आदि भी कलकत्ता पहुच गये थे।

बादशाह के साथ 500 आदमी मटिया बुर्ज में ठहरे थे। उनके बाद लखनऊ से इतने क़ाफ़िले कलकत्ता पहुंचे कि उनकी जनसंख्या 40 हज़ार तक पहुंच गयी और वह एक दूसरा लखनऊ बन गया। उन दिनों लखनऊ तो नहीं रहा किन्तु मटिया बुर्ज ही लखनऊ बन गया। यहां की चहल पहल, यहां की भाषा, यहां की जनता यहां की सोहबत थी। लखनऊ की ऐसी कोई भी वस्तु नहीं थी जो पूर्णरूप से वहां उपस्थित न हो। अतः वाजिद अली शाह को कलकत्ता के मटिया बुर्ज मे निर्वासित जीवन अत्यंत प्रिय एवं रोचक प्रतीत होने लगा। फिर भी उन्होंने पुनः राज्य--प्राप्ति के लिए महारानी विक्टोरिया को एक पत्र लिखा। लखनऊ से कलकत्ता तक की लम्बी यात्रा की असुविधा जनक पीड़ा को वाजिद अली शाह सहन नहीं कर पाये जिसके फलस्वरूप वह कलकत्ता पहुँचने के बाद अस्वस्थ हो गये अतः उन्होंने लंदन जाने का विचार छोड दिया।

अवध से जाने के बाद खुद वाजिद अली शाह अवध के लोक गीतों का विषय बन गये थे और उनके कलकत्ते चले जाने और उनकी मृत्यु के बाद भी रो रोकर गाये जाते थे।

हाय तुम्हरे बिना बरखा न सोहाय।
अरे मोरे कलकत्ते के जवय्या अल्लाह तुम्हें लाय।।
हाय अल्लाह तुम्हें लाय ("यादों की बारात")

दूसरा कुछ इस तरह है:

हजरत! जब से हुज़ूर जला वतन हुए हैं,
हमारा वतन बिल्कुल सुनसान और वीरान नज़र आता है।
अंग्रेज़ तमामतर कुव्वत और ज़ोर के साथ चढ़ आया।
ताकि मुल्क पर क़ाबिज़ हो जाय।
हमारा बादशाह कलकत्ते को रवाना हो गया।
हमारे लिये कौन सा दिलासा, सहारा छोड़ गया?

(1857 के लोक गीत मशमूला इन्किलाब 1857 ई.)

मंगलवार 12 शव्वाल 1272 हिजरी अर्थात 18 जून 1856 को लगभग 125 लोगों का क़ाफ़िला लेकर पानी के जहाज़ द्वारा मलिका किश्वर ने कलकत्ता से इंग्लैण्ड को प्रस्थान किया। उनके साथ उनके छोटे बेटे मिर्ज़ा सिकन्दर हशमत (जरनैल साहब) और वलीअहद मिर्ज़ा मोहम्मद हामिद अली के अलावा अनेक कर्मचारी उनके साथ लंदन गये। भूतपूर्व सहायक रेज़िडेन्ट मेजर बर्ड भी अपनी सेवाओं से त्यागपत्र देकर शाही दल के साथ शाहे अवध के पक्ष में महारानी विक्टोरिया का समर्थन प्राप्त करने के लिए लंदन रवाना हो गये।

लंदन में अवध के विलय को कॉमन्स सभा के उदार वादी गुट ने अप्रसन्नता की दृष्टि से देखा था, इसलिये शाही दल को उसका समर्थन प्राप्त करने की बड़ी आशाएं थीं, लेकिन 1857 के विद्रोह की आकस्मिक घटना के कारण उनका समर्थन समाप्त हो गया और अवध वंश के भाग्य का सितारा सदा के लिए डूब गया।

जब 1857 में भारत में अंग्रेज़ी राज्य के विरूद्ध विद्रोह हुआ तो लखनऊ की जनता ने भी वाजिद अली शाह की बेगम हज़रत महल के नेतृत्व में उसमें भाग लिया इसमें वाजिद अली शाह का हाथ समझकर अंग्रेज़ों ने उन्हें कलकत्ता के फोर्ट विलियम क़िले में 5 जून 1857 (7 शव्वाल 1273 हिजरी) को कैंद कर लिया। विद्रोह की समाप्ति के बाद 8 जुलाई 1859 को इस क़ैद से मुक्त किये गये और शनिवार 9 जुलाई को वह माटिया बुर्ज में वापिस आ गये। राज्य वापस मिलने की आशाएं तो पूर्णतः समाप्त हो ही गयी थीं। अतः बादशाह ने स्वेच्छा से अथवा अपने मुसाहिबों की सलाह से गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग को लिख दिया कि मुझे अंग्रेज़ सरकार की प्रस्तावित पेन्शन स्वीकार है। अतः मेरी इस वक़्त तक की तनख़्वाह दे दी जाये। सरकार ने जवाब दिया कि आप को पिछले दिनों की पेन्शन नहीं दी जायेगी, केवल इस समय से ही पेन्शन जारी होगी। इसके अलावा सिर्फ़ 12 लाख रूपये वार्षिक पेन्शन मिलेगी और जो 3 लाख रूपये वार्षिक आपके मुलाज़िमों के लिये तय किये गये थे, अब उनको देने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। विवश होकर बादशाह को यह शर्त मन्ज़ूर करनी पड़ी।

उसके बाद नवाब का शेष जीवन कलकत्ते के मटिया बुर्ज में ही बीता। वहां भी उनकी सांस्कृतिक गतिविधियाँ लखनऊ के समान ही चलती रहीं। वहाँ भी लखनवी तर्ज़ की इमारतें बनने लगीं, नाम भी वैसे ही थे जैसे लखनऊ में होते थे। वहाँ शेरो–शाइरी, नृत्य, संगीत के घराने भी काइम हो गये

थे। आनन्द मंडली वहाँ भी जमने लगी। भारत के प्रसिद्ध गायक वहां आकर एकत्र हो गये और वहां संगीतकारों का ऐसा झमघट हो गया जैसा और कहीं नहीं था। उनका साहित्य प्रेम भी गहरा था। बहुत कठिन उर्दू के साथ–साथ वह बहुत सरल और मुहावरेदार उर्दू लिखते थे। उनके सम्बोधन बड़े ही साहित्यिक और रोचक हुआ करते थे। मटिया बुर्ज में ही रहते हुए बादशाह ने अपने अधिकतर ग्रन्थों की रचना की।

उन्हें चरिन्द–परिन्द और विभिन्न जानवरों को पालने का भी बड़ा शौक़ था। अपने निवास स्थान के पास उन्होंने एक सम्पूर्ण चिड़ियाघर का निर्माण कराया था जिसमें लगभग सभी जीव जन्तु पाले गये थे। बादशाह की कोशिश रहती थी कि अधिक से अधिक जितनी क़िस्म के जानवर व परिन्दे मिल सकें सब वहाँ पर जमा कर लिए जायें। इस प्रकार उन्होंने एक ऐसा अद्वितीय चिड़ियाघर बनवाया था जैसा संसार में शायद ही कोई चिड़ियाघर रहा होगा। जानवरों को इकट्ठा करने में अधिक से अधिक व्यय किया जाता था। इस प्रकार अपने जीवन के अंतिम 28 वर्ष बादशाह ने मटिया बुर्ज में बड़ी मुश्किल से बिताये। वहीं पर 65 वर्ष की अवस्था में 3 मुर्हरम 1305 हिजरी अर्थात् 21 सितम्बर 1887 ईसवी को आधी रात के समय वे जन्नत नशीन हो गये। उनके शव को मटिया बुर्ज मे ही सिब्तैनाबाद के इमामबाड़े में दफ़्न कर दिया गया।

वाजिद अली शाह बड़े विनम्र, मिलनसार, तथा सद्‌गुणी व्यक्ति थे। वे प्रत्येक धर्म और ललित कलाओं का उचित सम्मान करते थे। इतने न्यायप्रिय, धर्म निरपेक्ष तथा साहसी

नवाब, अवध में बुरहानुलमुल्क तथा सआदत अली ख़ां के बाद वाजिद अली शाह ही थे।

दरबारी कुचक्र, षड्यंत्र, और रेज़ीडेन्सी के निरन्तर हस्तक्षेप से जब वह शासन से निराश हो गये तो अपनी निराशा और परेशानी को छिपाने के लिए उन्हें नृत्य, संगीत और शेरो–शाइरी का सहारा लेना पड़ा। धीरे–धीरे वह इसमें इतना डूब गये कि इसके समक्ष उनकी शासन व्यवस्था पंगु सी हो गयी। उन्होंने शासन व्यवस्था की तरफ़ से निश्चिंत होकर सारी सत्ता वज़ीर के हाथ में सौंप दी और अनेक कलाओं मे निमग्न हो गये। यही उनकी सबसे बड़ी भूल थी, जिसने अवध की ज़ब्ती का वातावरण शीघ्र ही तैयार कर दिया था।

वाजिद अलीशाह के हृदय मे अपनी प्रजा के प्रति असीम लगाव था। प्रजा की सुख सुविधा का उन्हें काफ़ी ध्यान रहता था। उनके दरबार में दो संदूक़ सिर्फ़ प्रजा की शिकायत पत्र डालने के लिए रखे रहते थे, जिन्हें प्रतिदिन सुबह खुलवाकर वे स्वयं उन शिकायतों को पढ़ते थे तथा उनपर तुरन्त कार्यवाही करने का आदेश देते थे। उनमें साम्प्रदायिक भावना बिलकुल नहीं थी वह हिन्दुओं के त्योहार होली, दशहरा, दीपावली तथा बसंत को भी बड़ी धूम धाम से मनाते थे। वह अपनी प्रजा मे इतने लोक प्रिय थे कि जनता उन्हें "जानेआलम" के नाम से पुकारती थी।

वाजिद अली शाह धार्मिक सिद्धान्तों का संयम से पालन करते थे। नियमित रूप से प्रतिदिन वह पांचों समय नमाज़ पढ़ते थे, रमज़ान के महीने में नियमित रोज़े भी रखते थे,

वह हर क़िस्म के नशीले पदार्थों से दूर रहते थे। शिआ़ होने के कारण वह मुहर्रम की अज़ादारी को बड़ी निष्ठा से सम्पन्न करते थे।

नवाब का व्यक्तिगत चरित्र बहुत ऊंचा था। बिना विवाह किये वह किसी स्त्री से सम्बन्ध नहीं रखते थे। कहा जाता है उनके अनगिनत बेगमात थीं परन्तु सभी से उन्होंने विधिवत् रीति से विवाह किया था। राजनीतिक परेशानियों के कारण उन्होंने अनेक विवाह किये थे शाम को सारी बेगमात सज सवर कर सोलह श्रृगांर किये, कैसरबाग़ में एकत्र होती थीं।

वाजिद अली शाह उच्च श्रेणी के कलाकार थे उनमे अगाध साहित्यिक प्रेम था उन्होंने "अख़्तर" उपनाम से अनेक रचनाऐं लिखीं। वह ठुमरी के जन्मदाता थे। उनकी रची हुई ठुमरियां, लय, पद और ताल की दृष्टि से बेजोड़ थीं। उन्होने कुल चालीस ग्रन्थ रचे और लाखों अशआर लिखे। उनके लिखे हुए छः दीवान और अनेक मस्नवियाँ प्राप्त हैं।

जाने आलम की साहित्य सेवा

वाजिद अली शाह बड़े साहित्य एवं संगीत–प्रेमी बादशाह थे। वे स्वयं एक साहित्यकार थे। कहा जाता है, उन्होंने सौ पुस्तकें लिखी थीं, पर उनमें 42 पुस्तकें प्राप्त हैं, जिनमें उनके 6 दीवान हैं और मस नवियाँ मशहूर हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ काव्य–रचना 'कुल्लियाते अख़्तर' है। इसके अ़लावा बादशाह ने लाखों अ़शआर कहे। गद्य पर भी वाजिद अली शाह का अच्छा अधिकार था। वे कठिन उर्दू के साथ–साथ सरल मुहावरेदार आम बोलचाल की भाषा भी लिखते थे एक खत का नमूना पेश

है, जो उन्होंने मुम्ताज़ बेगम को लिखा था--

"तुम्हारे ख़त को सीने पर रखा, छाती से लगाया, आँखों पर रखा, बहुत चूमा--चाटा, यहाँ तक कि हुरूफ़ भी मिट गये, इस पर भी बेजवाब लिखे तस्कीन न हुई"।

उर्दू--फ़ारसी में भी उन्होंने बहुत से क़सीदे लिखे हैं जो 'दफ़्तरे--परीशां' के नाम से दर्ज हैं। दो अ़रबी कलाम भी लिखे, जिन पर अमीर मीनाई ने फ़ारसी में टिप्पणी की है। गद्य--पद्य दोनों पर उनका बराबर का दावा था। उनकी लिखी प्रमुख गद्य रचनाएँ हैं-- 1. नसाइहे अख़्तरी, 2. मुबाहिसा बैतुल नफ़्स वल अक़्ल (हृदय तथा मन में बहस), 3. रिसाला--दर--बयाने अहले बैत, 4. जौहरे उरूज़ (काव्यकला)।

बादशाह को साहित्य से अगाध प्रेम था। बादशाह के दरबार में असीर, बर्क़, ख़्वाजा असद, क़लक़, ज़की, दरख़्शा, क़ुबूल, हुनर, बग़ैरह प्रसिद्ध शाइर थे। वह बर्क़ और असीर से शाइरी में परामर्श लेते थे। सैयद मुज़फ्फ़र अली ख़ां असीर उनके दरबारी कवि थे, जो अमेठी के रहने वाले थे और सैयद इमदाद अली के बेटे थे और उनके बाद 6 माह लखनऊ तथा 6 माह रामपुर में रहते थे, इनके अ़लावा बादशाह के साथ मीर हसन (मसनवी सहरुल बयान, गुलज़ारे नसीम), मोमिन ख़ा, नसीम क़लम, नवाब मिर्ज़ा 'शौक़' क़िदवई वग़ैरह शाइर थे। पद्य में बादशाह अख़्तर नाम से ग़ज़ल और जाने आलम पिया या अख़्तर पिया नाम से ठुमरी लिखते थे।

लखनऊ और कलकत्ता दोनों में उनका अपना प्रेस था, जहाँ से छपी हुयी अपनी रचनाओं के प्रिन्टस को मुफ़्त

बॉटते थे। उनकी पांडुलिपियाँ उनके अपने संग्रहालय में मौजूद हैं, जो बहुत सुन्दर लिखी हुई तथा सुनहरे बेल बूटों से सजी हुई हैं। कलकत्ता में उनके कातिब नवाब ज़ुल्फ़िक़ारुद्दौला सैयद मुहम्मद रज़्ज़ाक़ अली थे।

वाजिद अली शाह जाने आलम की पुस्तकों की सूची

पुस्तक का नाम	वर्ष	भाषा	विषय
1- अफ़सानए–इश्क़	1255हि०	उर्दू	मस्नवी
2- दरिया–ए–तअ़श्शुक़	1256हि०	उर्दू	मस्नवी
3- बहरेउल्फ़त	1256हि०	उर्दू	मस्नवी
4- गुल्दस्त–ए–आशिकां	1255-59हि०	उर्दू	गज़लियात
5- इश्क़ नामा	1263-65हि०	फ़ारसी	जीवनी
6- है बते हैदरी	1265हि०	उर्दू	धार्मिक मस्नवी
7- इश्क़नामा(मन्जूम)	1266हि०	उर्दू	मस्नवी जीवनी
8- मजमुअ़–ए वाजिदियाः	1263-66हि०	फारसी	अ़मलियात
9- बहरे हिदायत	1263-67हि०	फ़ारसी	फ़िक़ः
10- सौतुल मुबारक	1267हि०	फ़ारसी	उसूले मौसीकी
11- सु ख़ने अशरफ़	1258-67हि०	उर्दू	दीवाने गजलियात
12- इरशादे ख़ाक़ानी	1268-69हि०	उर्दू	इल्मे ऊरूज़
13- जवाबे बिलूव्य–बुक	1273हि०	उर्दू	मुताल्लेकाते तारीख़े अवध
14- दीवाने मुबारक	1255-73हि०	उर्दू	दीवाने गज़लियात
15- कुल्लियाते सोयम	1255-73हि०	उर्दू	कुल्लियाते नज़्म
16- हुज़्ने अख़्तरी	1274हि०	उर्दू	मस्नवी सवानेह
17- बहरे मुख़्तलिफ़	1275हि०	उर्दू	मंनज़ूम सवानेह
18- नसाहेअ अख़्तरी	1275हि०	फ़ारसी	आदाबे मजलिस

19- तारीख़े मज़हब	1272-73हि०	उर्दू	ख़तों का मजमूआ
20- तारीख़े मुम्ताज़	1272-76हि०	उर्दू	बादशाह के ख़त
21- तारीख़े ग़ज़ाला	1275हि०	उर्दू	बादशाह के ख़त
22- तारीख़े नूर	1272-76हि०	उर्दू	ख़तों का मजमूआ बेगमात के ख़त
23- तारीख़े बद्र	1273-76हि०	उर्दू	ख़तों का मजमूआ बेगमात के ख़त
24- तारीख़े फ़िराक़	1275-76हि०	उर्दू	ख़तों का मजमूआ बेगमात के ख़त
25- तारीख़े जमशैदी	1275-76हि०		ख़तों का मजमूआ बेगमात के ख़त
26- शेव–ए–फ़ैज़	1272-73हि०	उर्दू	कुल्लियाते नज़्म
27- कुल्लियाते अख़्तरी	1255-78हि०	उर्दू	कुल्लियाते नज़्म
28- कमर मज़मून	1276-81हि०	उर्दू	कुल्लियाते नज़्म
29- नाज़ो	1285-86हि०	हिन्दी	मजमूअ–ए नज़्म
30- सहीफ़–ए–सुल्तानिया	1286हि०	फ़ारसी	अद्दु–आ
31- नज़्मे नामवर	1279-78हि०	उर्दू	कुल्लियाते नज़्म
32- ईमान	1268-88हि०	उर्दू	नौहा–सलाम
33- दुल्हन	1289हि०	हिन्दी	मजमूअ–ए नज़्म
34- मबाहिसे–बैनुल–नफ़्स वल अक़्ल	1287-89हि०	फ़ारसी	मसाइले दीनिया
35- जौहरे ऊरूज़	1290हि०	फ़ारसी/उर्दू	फ़ने ऊरूज़
36- बन्नी	1291-94हि०	उर्दू/हिन्दी	मजमूअ–ए–कलामे नसरो–नज़्म
37 मिल्के अख़्तर	1291 95हि०	फ़ारसी/उर्दू	मजमूअ–ए कलाम

38- मलाजुल कलेमात	1276-97हि०	फ़ारसी	लुग़त
39- तोश–ए–आख़िरत	1267-99हि०	उर्दू	मजमुअ–ए तोश–ए–आख़ेरत
40- रियाजुल उक़बा			मजमूअ–ए–तोश–ए –आख़िरत का इन्तिखाब
41- रियाजुल कुलूब	1297-99हि०	उर्दू	कसअ सुल अम्बिया
42- सिबातुल कुलूब	1300-1304हि०	उर्दू	मज़हबी मस्नवी

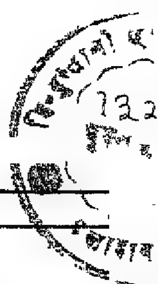
जाने आलम की संगीत सेवा : कहा जाता है, अवध के अंतिम शासक वाजिद अली शाह के पैर का अँगूठा सोते समय भी लैकारी की अदा से चलता रहता था और यह बात सच है कि लखनऊ के इतिहास में नृत्य–संगीत की इतनी वृद्धि–समृद्धि और कभी नहीं हुई जैसा कि जाने आलम के ज़माने में हुई।

नवाब नृत्य–संगीत में अत्याधिक रुचि रखते थे। गाने बजाने की कला विकसित करने के लिए तरह–तरह के सांसकृतिक कार्यक्रम–क़ैसरबाग़ में आयोजित करते थे। वह रास लीला रचने, नाटक खेलने, इन्द्र सभा सजाने और जोगियाना मेला लगाने के रसिया थे। रासलीला के वाजिद अली शाह खुद मोरपंख लगाकर कन्हैया बनते थे। उनके रास लीला खेलने का मुकुट एक लाख रुपये की क़ीमत का होता था। इन्द्र सभा मिर्ज़ा अमानत की लिखी हुई मशहूर मस्नवी थी,।

जिसमें परीख़ाने की तमाम परियाँ राजा इन्द्र बने बादशाह के दरबार में पेश होकर अपने गीत–संगीत के कमाल दिखाती थीं। जब जोगियाना मेला लगता था, तो अपने महबूब के नाम पर अलख जगाने वाले और प्रेम में मतवाले जोगी, जाने आलम का अभिनय देखने से तअल्लुक़ रखता था। उस वक़्त नवाब सिकन्दरमहल उनकी खास बेगम हुआ करती थीं।

इन सभी सांस्कृतिक कार्यक्रम करने वाले गायकों, वादकों, और नाचने वालियों को उन्होंने तनख़ाहें देकर मुलाज़िम रखा था। कलकत्ते में उनकी पार्टी में 360 आदमी थे, जिन पर 1,16,590 रुपये तनख़ाह ख़र्च होती थी। उस दौर में साम्प्रदायिक एकता का यह कितना बड़ा सुबूत था। वह संगीत के इतने बड़े पुजारी थे कि उन्होंने बढ़चढ़ कर, नृत्य नाटिकाओं में अपनी शैली स्थापित की और स्वयं नाट्य संस्था की स्थापना की। दरअस्ल कैसरबाग़ का परीख़ाना एक तरह का छात्रावास ही था जिसमें तमाम कलाकार लड़कियाँ प्रशिक्षित की जाती थीं। उसमें अच्छी आवाज़ वाली रियाज़दार लड़कियाँ दाख़िल होती थीं, जिनको कुछ वेतनभोगी पारंगत परियाँ नाच–गाना सिखाती थीं।

शाहे अवध का दरबार कलाकारों से भरा रहता था। प्रसिद्ध नर्तक कालिका, बिन्दादीन के पिता ठाकुर प्रसाद जी उनके दरबारी कथक थे और उन्होंने ही बादशाह को नृत्य की शिक्षा दी थी। बादशाह की महफ़िल में एक से एक बढ़कर उच्च कोटि के गायक और वादक थे। रामपुर के कुतबुद्दीन बहुत अच्छा सितार बजाते थे। उनका हाथ बड़ा मीठा बेजोड़,



था, कुदई सिंह पखावज वादक थे, हाजी विलायत अली दरबार के प्रधान तबलची थे, रफ़ीउद्दौला बड़े जाने–माने गायक थे। लल्लु जी तथा प्रकाश जी कथक नृत्य करते थे। कन्हैया नक्काल और मुहम्मद ख़ां कव्वाल भी उनकी अंजुमन की जीनत बनते थे तो मुन्नीबाई तवाइफ़ की गलेबाज़ी और बिदेसवा वाली वज़ीरन का ध्रुपद उनकी ख़ास पसन्द थी, इसके अगुवा प्यारे ख़ां, ज़ाफ़र ख़ां, बासित ख़ा, हैदर ख़ा वगैरह थे और छज्जू ख़ां, जिन्हें जन्मजात गवैया माना जाता है, उनके ख़ास उठने–बैठने वालों में थे। वह उनके साथ कलकत्ते तक जाकर 11 साल मटियाबुर्ज में रहे।

नवाब बड़े फ़नकार परस्त और अदब नवाज़ आदमी थे वह खुद दो घंटे संगीत का रियाज़ करते थे और लैबाज़ी में अच्छे–अच्छे गवैये उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते थे। होली गाने का बड़ा शौक़ था इसमें उनके दोस्त वज़ीर और ससुर नवाब अली नक़ी ख़ां उनका पूरा साथ देते थे। सैयद अली नकी खुद अच्छे सितार वादक थे। अली नक़ी ख़ां जो हैदर ख़ा के शिष्य थे होली बहुत अच्छी गाते थे और सितार बजाने मे उन्हें कमाल हासिल था। नवाब को ठुमरियों का अविष्कारक माना जाता है। उन्होंने पिया जाने आलम नाम से बहुत सी ठुमरियां और अख़्तर नाम से बेशुमार ग़ज़लें लिखी हैं। उनकी रची ठुमरियां तो ताल और लय की दृष्टि से आज भी बेजोड हैं। इसी परम्परा में बाद में नासिर पिया, और सनद पिया ने लिखना शुरू किया।

लखनऊ में वाजिद अली शाह के वक़्त में ललित कलाएं अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी थीं। जब नवाब को

अवध से कलकत्ते पहुंचा दिया गया तो मौसीक़ी का यह कारख़ाना हुगली के किनारे आबाद हो गया और वहां भी उन्होंने संगीत की ख़िदमत में कोई कोताही नहीं बरती। कलकत्ते में उनकी पार्टी में 360 आदमी थे, जिनकी तनख़्वाह पर 1,26,590 रुपये खर्च होते थे। इस सिलसिले में सन् 1867 को, होली का त्यौहार कलकत्ता मटियाबुर्ज के दरबार हाल में मनाया गया के उपलक्ष में, एक जलसा उल्लेखनीय है। जिसके संगीत समारोह में जदुमह और अघोरनाथ ने ध्रुपद गाया, सज्जाद मुहम्मद ने सितार बजाया, करामत उल्ला ख़ां के शिष्य धीरेन्द्र नाथ बोस ने सरोद और श्यामलाल गोस्वामी ने इसराज बजाया था। इस महफ़िल में जाने माने संगीतज्ञों में मुरादअली खां, रामचन्द्र बराय और पतरयाघाट वाले सुरेन्द्र मोहन टैगोर भी मौजूद थे।



परीख़ाना

(Morris College of Hindustani Music)

जब परीख़ना क़ाइम करने की धुन जाने आलम को सवार हुई तो निहायत शोख़, नाज़ुक अदा औरतें फ़राहम की गई "उन के रहने के लिए दरे दौलत (महल के क़रीब) एक पुर तकल्लुफ मकान चुना गया। यह इमारत उस मक़ाम पर ब्यान की जाती है जहाँ पर 1874 में केनिंग कालेज क़ाइम हुआ था इसके सामने ही क़ैसरबाग़ में संगमरमर की नहर और पुल मौजूद है। इत्तेफ़ाके ज़माना से अब फिर इसी मक़ाम पर केनिंग कालेज की इमारत में हिन्दुस्तानी म्युज़िक का मेरिस कालेज क़ाइम हुआ है।

परीख़ाना के लिये यह इमारत मुख़्तसर थी मगर सफ़ाई और सजावट की वजह से रश्के फ़िरदौस बन गई थी, सहन (आंगन) में संगेमरमर का फ़र्श था जिस पर चीनी के गुलदस्ते क़रीने (सुचारु रूप) से जा बजा हर तरफ़ रखे थे। जगह–जगह चौकियां रखी थीं, जब मकान झाड़ फानूस, परदो और दूसरे सामानों से सज कर तैयार हो गया और दुल्हन की तरह सज गया तो उसे "परीख़ाना" का नाम दे दिया गया। परियों और साज़िंदों का क़याम इसी में था। ड्योढ़ी पर तुर्कने (तुर्किस्तान की औरतें) पहरा देने को तैनात की गई। ताकि मख़सूस (विशेष) आदमियों के अलावा वहां परिन्दा तक पर न मार सके। परियों के लिये जर्क़–बर्क़ और रंग बिरंगी पौशाकें भी तैयार हुई थीं। इन मशाग़िल (खेल) पर कई लाख रुपया सालाना ख़र्च होता था और रोज़मर्रा (प्रतिदिन) पहरों, वलीअहद की गुलाम, रज़ा, खम्मन, छज्जुख़ां, साबित अली से सोहबते

ऐशो निशात गर्म रहती थी और परियों की तालीम हुआ करती थी। वलीअहद खुद भी इल्मे–मौसीक़ी के क़वाइद (संगीत के सिद्धान्त) सीखने को दिल से मशग़ूल रहते थे, इस तरह उन्होंने सितार नवाज़ी और तबला नवाज़ी में इतनी मशक (अभ्यास) हासिल कर ली थी कि सुन्ने वाले खो से जाते थे।

परीख़ाना सुसज्जित होने के बाद वलीअहद ने इरादा किया कि गायन कला के क़वाइद (सिद्धान्त) भी बनाये जायें, मुसाहिबों ने अर्ज़ किया इस के लिये भी खुश गुलू तवाइफ़ें तलाश की जायें जिनको मौसीक़ी में काफ़ी मालूमात हो और तान लगाने में तानसेन की ख़ूबी रखती हों। इस के लिये एक प्रोग्राम बनाया गया कि जब कोई ऐसा माशूक़ किसी को मिले तो उसे पेश किया जाये। उस से मालूम किया जाता कि वह हुज़ूर के घर पर पड़ने को रज़ा मन्द है फिर क्या था हर शख़्स वली अहद के मिज़ाज में रसूख़ पैदा करने और सुर्ख़ रूई जताने को मुन्तख़िबे रोज़गारे ज़माना माशूक़ की जुस्तजू कर के लाते और "मारूज़ा" के नाम से उन को ख़िदमत में पेश करते। वली अहद सब शर्तें तै करके उन के क़याम के लिये मकान तजवीज़ करते और तन्ख़्वाह मुक़र्रर कर देते। इस तरह शबोरोज़ जलसा रहता, ग़मो अलम पास न फटकता, जिस वक़्त सब गुलअन्दाम और खुश गुलू (अच्छा गाने वालियाँ) परियाँ हलक़ा बाँधकर (गोलाई में) बैठतीं और उनके बीच वली अहद विराजमान होते और सितार बजाते, वह सब आवाज़ मिलाकर गाती थीं तो राजा इन्द्र के अखाड़े का लुत्फ़ आता था। उन परियों में अकसर हामला होकर महल के रूतबे पर फाइज़ और तैनात हुईं।

क़ैसरबाग़

जाने आलम का सब से बड़ा तामीरी कारनामा क़ैसरबाग़ है मगर इस का सब से अच्छा, बेहतरीन और हसीन तरीन (सुन्दर) हिस्सा जो चाइना बाज़ार गेट के अन्दर था, 1858 ई. में जब अंग्रेज़ों का दुबारा तसल्लुत हुआ तो फ़ौजें अंग्रेज़ों के हाथों लुट कर खुद गया और बिल्कुल तबाह व बरबाद हो गया। बादशाह ब नफ़्से-नफ़ीस इन्हीं इमारतों में क़्याम फ़रमाते थे। जिनको एक नज़र देखने का बड़ी-बड़ी हस्तियों को इश्तियाक़ था। अब सिर्फ़ वह हिस्सा बाक़ी रह गया है, जिस मे बादशाह की बेगमात रहा करती थीं।

क़ैसरबाग़ के अलावा मौसूफ़ ने हज़रतगंज में अपने वालिद (पिता) अमजद अली शाह की क़ब्र पर एक आलीशान मकबरा तामीर कराया जिसका नाम उन्होंने सिब्तैनाबाद रख्खा था। अपनी रफ़ीक़-ए-हयात आलमआरा बेगम मारुफ़ ब खासमहल साहिबा के लिये कानपुर रोड पर आलमबाग़ बनवाया और एक दूसरी महबूब बीवी सिकन्दर बेगम के लिये सिकन्दर बाग तामीर कराया। उन के वज़ीर अली नक़ी ख़ां का आलीशान मकान व बाग़ मोहल्ला तहसीनगंज में था, वाजिद अली शाह ने चौक में मच्छली वाली बारादरी बनवाई जिस पर अब लाला भोलानाथ का धर्मशाला तामीर हुआ है, इस के अलावा उन की कई इमारतें दरिया के किनारे गऊघाट पर थीं और एक अजीमुश्शान कोठी हज़रतगंज में भी थी।

जाने आलम के मुहिब्बाना खुतूत (मुहब्बत भरे पत्र) ने जो उन्होंने अपनी बाज़ बेगमात को लिखे थे, अपनी रंगीन

ब्यानी से दुनियाए अदब (साहित्य संसार) में एक क़ाबिले कद्र इज़ाफ़ः कर दिया।

कलकत्ते में भी शाह के इन्तेक़ाल के बाद निकाही बिवियों के अलावा मुताई बीवियों की तादाद पूरे ढाई सौ थी, जिनको आठ भागों में विभाजित करके डेढ़ सौ रुपये माहवार से लेकर पन्द्रह रुपये माहवार तक गुज़ारे के लिए दिये गये थे और बाज़ को एक मुश्त रक़म देकर भी रुख़सत कर दिया गया था। इन मुताई बीवियों को तीन हिस्सों में तक़सीम किया गया था।

अहदे वाजिद अली शाह के शाइर

वाजिद अली शाह के दरबार में उनसे सम्बन्धित सैकड़ों औरतों का जिक्र तो लोगों ने बड़े ज़ोर–शोर से किया है, लेकिन उनके साथ यानी उनके समय, उन के दरबार के साहित्यकारों, शाइरों, नाटक कारों, मौसीक़ारों, शहजोरों (बहादुरों) शहसवारों, बांकों, बिन्नौटियों, पैराकों, ग़ोताख़ोरों, मुसव्विरों (तसवीर बनाने वाले) खुश नवीसों, मरसियागोयों, नौहा ख़्वानों, हकीमो, जर्राहों, खत्तातों (अच्छा लिखने वाले) दरजियों, रंगरेज़ों, रकाबदारों के ज़िक्र बहुत मिलते हैं जिससे वाजिद अली शाह की दरिया दिली का पता चलता है लेकिन अंग्रेज़ों के ज़रख़रीदों ने ऐसी साज़िशें की जिस से वह सिर्फ़ बदनाम ही हों।

वाजिद अली शाह स्वयं एक बहुत अच्छे शाइर थे और शाइर नवाज़ भी। उन्होंने अपनी वली अहदी से बादशाह होने तक और उन्नति से पतन तक अर्थात कलकत्ता की क़ैद में भी उन्होंने शाइरों की सरपरस्ती की और उन्हें इनामात से नवाज़ते रहे।

उस दौर के मुम्ताज़ शाइर मीर अनीस और मिर्ज़ा दबीर थे जिन्होंने मरसिये को काफी बुलन्दी तक पहुंचा दिया था।

मिर्ज़ा शौक़ मरसिये में अपनी मिसाल आप थे। ग़ज़ल मे फतहउद्दौला बर्क़ जो नासिख़ के उस्ताद थे, और बादशाह के बहुत क़रीब थे। अकसर अदीबों की राय है कि वह बादशाह के उस्ताद थे।

महताबउद्दौला दरख़शां, तदबीरउद्दौला मुंशी मुज़फ़्फ़र अली के शार्गिद थे। ये बादशाह के साथ रहे और कलकत्ता ही क्या, जब तक वह हयात रहे उन्हीं के साथ रहे। फतहउद्दौला खल्क़ और असीर लखनऊ में ही रहे। मिर्ज़ा मोहम्मद रज़ा, कर्बला–ए–मुअल्ला चले गये। मिर्जा मसीता ऐश, नासिख़ के शार्गिद थे। आग़ा हज्जू शर्फ़ आतिश के शार्गिद थे। मिर्जा हामिद अली यावर, बर्क के शार्गिद थे। मुज़फ़्फ़रअली हुनर, गुलशनउद्दौला मिर्जा अली बहार, मालिकउद्दौला सौलत, शेख़ सादिक़ अली माइल बादशाह के दामाद और भतीजे मिर्जा जहाँ कद्र नय्यर, बादशाह मिर्ज़ा आसमान जाह अंजुम, वली अहदे सल्तनत, मिर्जा हामिद अली कौकब और बिरजीस क़द्र तो दरबार से मुताल्लिक़ शाइर थे। दरबार के बाहर के शाइरों में मीर अनीस, मिर्ज़ा दबीर, असीर, अमीर मीनाई और अमानत थे।

उर्दू दुनिया अच्छी तरह जानती है कि वह सब अपने–अपने फ़न में बेमिसाल गुज़रे हैं जिन्हें वाजिद अली शाह की सरपरस्ती मिली, वाजिद अली शाह ने केवल शाइरों और अदीबों की ही परवरिश नहीं की बल्कि कातिबों खुशनवीसों

मुसव्विरों, हकीमों, जर्राहों, शहसवारों, मौसीकारों, नर्तकों, की भी परवरिश की और उन्हें कमाल तक पहुंचाने में भी मदद की। रक़्क़ासों (नर्तकों) में ख़ास कर बिन्दादीन, कथक के ऐसे उस्ताद गुजरे हैं कि आज तक इस क्षेत्र के लोग उनके नाम से ही नृत्य आरम्भ करते हैं। बिन्दादीन, दुर्गा प्रसाद के लड़के थे और वाजिद अली शाह की फय्याज़ियों के परवर्दा (पाले हुये) थे।

नव्वाब मिर्ज़ा शौक़ 1783-1871

नव्वाब मिर्ज़ा का असली नाम तसद्दुक़ हुसैन खॉ था। लखनऊ के एक सम्मानित घराने में पैदा हुये। शाइरी में वह आतिश के शार्गिद थे, वह अपने वक़्त के हकीम भी थे। उर्दू अदब के इतिहास में 'ज़हरे इश्क' जो सब से ज़्यादा मशहूर है वह 1860-1862 के मध्य में लिखी गई है। 'ज़हरे इश्क़' एक बेनाम नौजवान लड़की और लड़के की मोहब्बत की छोटी सी कहानी है। इसमें इश्क़ और मोहब्बत की ज़रा–जरा सी बात भी सच लगती है। शायद इसी बिना पर मस्नवी का पढ़ना ऐब समझा जाता था और अंग्रेज़ों ने इस के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

'ज़हरे इश्क' बिलकुल सादा और मासूम मालूम होती है लेकिन शाइर का कमाल है कि सच्चाई के साथ इन वाक़ेआत को इस तरह ब्यान किया है कि मस्नवी पुर असर बन गई है। ज़हरे इश्क़ के आख़री हिस्से के कुछ अश्आर (जब लड़की ने मायूस होकर ज़हर खालिया है, माँ उसके जनाज़े पर मातम कर रही है।)

सब अमीरो फ़क़ीर रोते हैं,
देख कर राह गीर रोते हैं।

सब के पीछे पिनस में थी मादर,
कहती जाती थी इस तरह रोकर।।
तेरी मय्यत पे हो गई मैं निसार,
कम सुखन हाय मेरी ग़ैरत दार।
दिल पे जो गुज़री कुछ ब्यान न की,
कुछ वसीय्यत भी मेरी जान न की।

ख़्वाजा हैदर अली आतिश लखनवी:

आतिश के देहान्त की तारीख़ 13 जनवरी 1847 ई० है। इन्हें माधवलाल की चढ़ाई लखनऊ के पास उनके अपने मकान में दफ़न किया गया था। अब निशान बाकी नहीं है। मीर बबर अली अनीस के देहान्त की तारीख़ 10 दिसम्बर 1874 ई० है। चौक लखनऊ में दफ़न हैं।

मिर्ज़ा सलामत अली दबीर :

आप अपने मकान कूच–ए मिर्जा दबीर लखनऊ में दफ्न है। इनकी तारीखे़ वफ़ात 9 मार्च 1875 ई० और 30 मुहर्रम 1292 हिजरी है। इन सभी शाइरों को वाजिद अली शाह की सरपरस्ती हासिल थी।

उन के दौर में ऐसे शाइर गुजरे हैं जिन की मिसाल आज तक मिलना मुशकिल है। मरसियः, ड्रामा तो अस्ल में इन के अहद की ही देन है। साहित्य एवं कला की सरपरस्ती तो उन्होंने वतन से दूर रह कर भी की, जब मटियाबुर्ज में प्रेस स्थापित हो गयी तो अदीब, शाइर, रवत्तात, कातिब सब वहीं पहुंच गये।

सारा आलम वहीं ढुल गया जिस जगह जाने आलम गये।

अवध की आमदनी का कम होना :

अवध की आमदनी नित्य–प्रतिदिन कम होती जारही थी। नमक हराम कारिंदे अपने स्वार्थ और लाभ के लिए रिश्वत खोरी पर उतावले थे। सरकारी महसूल (कर) दस रुपये लेकर माफ़ कर दिया करते थे। ख़ज़ाना ख़ाली हो रहा था और रिश्वत ख़ोरों के ख़ज़ाने भर रहे थे। ख़ज़ाना ख़ाली, बादशाह गरीब और उसके चाकर मालदार हो रहे थे। बादशाह दिल से चाहते थे कि उनके मुल्क की माली हालत सुधरे लेकिन वह जितना सुधार करते थे उससे अधिक उन्हें नुक़सान पहुंचा दिया जाता था। नाज़िम और चकलेदार नवाबी ठाठ से रहने लगे। नाज़िमों की सवारी के जुलूस, शाही जुलूसों की भांति निकलते थे। उन्हें तोपों की सलामी दी जाती थी। ग़रीबी बादशाह और जनता के हिस्से में आ रही थी। ग़द्दार अधिकारी रेज़िडेन्ट से बादशाह की शिकायत करते थे जिसे वह नमक मिर्च लगाकर गवर्नर को लिखता था वहां से हुकूमत के कामों में नई–नई बंदिशें और रुकावटें खड़ी करने के हुक्म दिये जाते थे। ग़द्दार दरबारी साज़िशों में व्यस्त थे और चाहते थे कि बादशाह के अधिकार कम से कम होते जायें और उनकी नौकरियां भली भांति सुरक्षित रहें। इसके लिए वह रेज़िडेन्ट की खुशामद करते और बादशाह की बुराइयाँ करके रेज़िडेन्ट को खुश करते और उसके प्रति अपनी वफ़ादारी प्रकट करने में होशियारी समझते।

बादशाह के सामने जब ऐसे हालात और संकट पैदा कर दिये गये तो वह मायूसी से हार गया तो वह अपना अधिक

से अधिक समय नृत्य कला और कविता को समर्पित करने लगा और उसने अपने आपको समय की धारा पर छोड़ दिया और यह तब हुआ जब उसने देख लिया कि अब सल्तनत का इतिज़ाम करना उस से बाहर हो चला है। बादशाह ने अपने मन को बहलाने और अत्मा को सुकून और चैन देने के लिए नई--नई कलायें और संगीत की प्रतिभाएं तलाश करना शुरु कर दीं क्योंकि वह स्वयं भी बहुत बड़ा कलाकार और कला का पुजारी था।

अवध एक बहुत बड़ी रियासत थी जिसके उत्तर में नैपाल, दक्षिण में गंगा, पूरब में रोहेलखण्ड था, जो बाद मे चन्द सालों के लिए अवध में मिल गया था। तब पूरब में बिजनौर, तक पश्चिम में बनारस तक था।

अवध की तहसीलें :

अवध की हुकूमत को पांच भागों में विभाजित किया गया ताकि लगान व महसूल (टैक्स) अच्छी तरह प्राप्त हो सके। इनको "निज़ामत" कहा जाता था। हर 'निज़ामत' में तीन चार चकले होते थे, इन चकलों के चकलेदारों के अतिरिक्त 'तहसीलदार' भी होते थे, जो तहसील वसूल करके चकलों में जमा करते थे और निज़ामत से हुजूर तहसील में जाता था। सारे चकले निजामत के तहत होते थे, निजामतों के अतिरिक्त जो चकले हुजूर तहसील से संबंधित थे वह बारह (12) थे। "तारीख़े--अवध" भाग 5 के अनुसार वह बारह (12) चकले इस प्रकार थे।

1 बाड़ी बिस्वां, 2. दरियाबाद--रुदौली, 3. देवा कुर्सी, 4.

नवाबगंज, 5. गोसाइंगंज, 6. मोहान, 7. रसूल आबाद, 8. सफ़ीपुर, 9. बांगर मऊ मल्लावां, 10. सांडी पाली, 11. मुहम्मदी, 12. मटियागंज

चकले बंदोबस्त के अनुसार बदलते रहते थे। कभी किसी निज़ामत में तो कभी किसी में और कभी हुजूर तहसील में । हुज़ूर तहसील में लगान जमा करने में, किसी अधिकारी के द्वारा जमा करने की आवश्यकता नहीं थी। हर व्यक्ति स्वयं जमा कर सकता था। ख़ज़ाना–ए–आमर–ए–सुल्तानी केन्द्रीय विभाग था। वहाँ हर प्रकार की आदाएगी चाहे वह किसी भी विभाग की हो, की जा सकती थी। लखनऊ से संबंधित एक अलग अधिकारी था। हर चकले में इजारादारी का ठेका होता था जो लगान वसूली के क्षेत्र के अनुसार घटता बढ़ता रहता था। नसीरुद्दीन हैदर के ज़माने में राजा दर्शन सिंह छियासी (86) लाख का अकेला 'मुस्ताजिर' हो गया था। इस तरह हाकिम मेंहदी अली मुन्तज़िमउद्दौला मुस्ताजिरी करते करते मत्री पद तक पहुंच गया था। 'मुस्ताजरी' में फ़ौज और अम्माल (कर वसूलनेवाले), नाज़िम (सचिव) के अंतर्गत होते थे। उनकी तन्ख़ाहें हुज़ूर तहसील से अदा होती थीं।

मुस्ताजरी के अतिरिक्त 'अमानी' की सूरत में सारा खर्च ख़ज़ान–ए–आमर–ए–सुल्तानी से अदा होता था। अम्माल की नियुक्ती क्षेत्र के बडे अफसरान की सिफारिश पर नाज़िम किया करता था। केन्द्रीय फ़ौज के अतिरिक्त हर साल नई फौज की भरती होती थी। यह तह बंदी सिपाही होते थे जो दफ़तरों में चपरासी की हैसियत से काम करते थे। इनको दो

रुपये मासिक तनख़ाह ख़ज़ान–ए–आमर–ए–सुल्तानी से मिलती थी। अम्माल की नियुक्ति दीवानी दफ़्तर के बड़े अफ़सर और बैतुल–इन्शा (लिखने पढ़ने का विभाग) के हाकिम करते थे।

'अख़बार नवीस' खुफ़्या का विभाग था। यह हर विभाग में काम करता था। इसकी हैसियत केन्द्रीय विभाग की तरह थी। हरकारे हर दफ़्तर में होते थे जो डाक वितरित करते थे, यह ख़ज़ान–ए–आमर–ए–सुल्तानी से तनख़ाह पाते थे। वह 'चोबदार' जो महल में और बादशाह के क़रीब होते थे, काफ़ी लाभ में रहते थे, वैसे उनकी तनख़ाह दो रुपये मासिक ही हुआ करती थी लेकिन अकसर चोबदार काफ़ी मालदार गुजरे हैं।

फ़स्ली साल 'कुंवार' मास से शुरु होता था और 'भादों' मास में ख़त्म होता था। यह वही फ़स्ली निज़ाम था जो शहशाह अकबर ने लागू किया था। ज़मींदार अकसर सरकशी किया करते थे, मालगुज़ारी जमा न करने की सूरत में 'कुर्की' हुआ करती थी और ज़मींदारी किसी और को दे दी जाती थी। जमींदार अकसर मालगुज़ारी जमा न करके 'अम्माल' और दूसरे अधिकारियों को रिश्वत देकर छूट जाते थे लेकिन जब उनकी शिकायत नाज़िम तक पहुंच जाती थी तो वह अपने सिपाहियों से लगान और मालगुज़ारी वसूल कराता था। अगर इस पर भी मालगुज़ारी जमा नहीं होती थी तो लड़ाई होती थी और बादशाह तक इत्तिला पहुंचने की सूरत में ज़मींदारी ज़ब्त कर ली जाती थी। फ़ौज जिस क्षेत्र में रहती थी उसकी तनख़ाह वही देता जो उसे महसूल के साथ जमा करना होती

पैदल तिलंगे

1- हुज़ूरी
2- ख़ास क़दीमी
3- जांबाज़
4- फ़त्हे मुबारक
5- अख़्तरी
6- वाजिदी
7- घंगोर
8- सिकंदरी
9- दल
10- जांनिसार
11- ज़फ़र मुबारक
12- गुलाबी--पलटन
13- जहानशाह
14- जहांपनाह
15- नुसरत
16- अदाकुशा
17- दुशमन कोब
18- अदाशिगाफ़
19- फ़त्हजंग
20- फ़ग़्फ़री
21- वज़ीरी
22- खुस रवी
23- अदा शिकार

सवार होते थे।

3. **कुआबी :** यह प्रशिक्षण लिये हुए सवार होते थे जो बादशाह की सवारी के पीछे चलते थे।
4. **अस अदी :** यह बादशाह की सवारी से आगे चलने वाले सवार थे।
5. **मुज़फ़्फ़री :** यह प्रशिक्षित दस्ता होता था जो सारे हथियार समेत बादशाह के साथ चलता था।
6. **तहव्वरी :** यह भी प्रशिक्षित सवारों का दस्ता था।
7. **मन्सूरी :** यह भी प्रशिक्षित सवारों का दस्ता था।
8. **अकबरी :** यह भी प्रशिक्षित सवारों का दस्ता था।
9. **ग़ज़नफ़री :** यह भी प्रशिक्षित सवारों का दस्ता था।
10. **बांका :** यह बांक के उस्ताद सवारों का दस्ता था।
12. **ख़ाक़ानी :** यह प्रशिक्षित सवार दस्ता था।
13. **सुलेमानी :** यह भी प्रशिक्षित सवार दस्ता था।
14. **जंगी :** यह जंग के लिए ही काम आने वाला दस्ता था जो हर समय जंग के लिए तैय्यार रहता था।
15. **जंगियान :** यह जंग के लिए ही काम आने वाला दस्ता था जो हर समय जंग के लिए तैय्यार रहता था।
16. **हबशियान :** यह भी प्रशिक्षित हब्शी लोगों का दस्ता था।
17. **मुहम्मदी या रिसाला :** यह ऊंट सवार होते थे जो कम वज़नी और छोटी तोपें भी रखते थे।
18. **ऊंट सवार :** यह भी एक प्रशिक्षित दस्ता था जो आमने सामने होकर लड़ता था।

पैदल तिलंगे

1- हुज़ूरी
2- ख़ास क़दीमी
3- जांबाज़
4- फ़त्हे मुबारक
5- अख़्तरी
6- वाजिदी
7- घंगोर
8- सिकंदरी
9- दल
10- जांनिसार
11- ज़फ़र मुबारक
12- गुलाबी–पलटन
13- जहानशाह
14- जहांपनाह
15- नुसरत
16- अदाकुशा
17- दुशमन कोब
18- अदाशिगाफ़
19- फ़त्हजंग
20- फ़ग़्फ़री
21- वज़ीरी
22- ख़ुस रवी
23- अदा शिकार

24- सायका किरदार
25- साबित
26- असा–ए–हैदरी
27- बर्क़
28- इनायत,
29- काज़िमी
30- ज़ुलफ़िकारे हैदरी
31- ज़ुलफ़िकारे सफ़ दरी
32- मुहम्मदी
33- नासिरी
34- जाफ़री
35- अब्बासी
36- रफ़अत
37- सफ़शिकन
38- सफ़दरी
39- क़ैसरी
40- बादशाही
41- असकरी
42- फ़त्ह–ऐश
43- ज़र्रार
44- शम्स
45- बिजली
46- बाईसी
47- अली ग़ोल
48- जमीअते हमराही।

अफ़सरान और सिपाह सालारों के नाम

1- सरबाज़ खां

2- कप्तान विल्यम हर्सी

3- इमतियाज़ ख़ां

4- कप्तान अलेग्ज़ेन्डर ओरगेनर।

उहदों (पदों) के नाम

ख़ानसामां : यह स्टोर कीपर और अकसर होम मिनिस्टर की तरह होता था।

दीवान : यह पुलिस का आला अफ़सर होता था जैसे आजकल आई०जी० पुलिस।

दारोग़ा : यह हर विभाग का अलग अधिकारी होता था। जैसे दारोग़--ए--मतबख़, दरोग़--ए--ज़िनदान, दारोग़--ए--असतबल, दारोग़--ए--इन्शा इत्यादि।

फ़ौज के प्रशिक्षण के लिए फ़्रांसीसी, और अंग्रेज़ दोनों थे। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंतर्गत आने के पश्चात्, फ़्रांसीसी प्रशिक्षक अधिकतर निकाल दिये गये, केवल अंग्रेज़ रह गये।

फ़ौज को देसी ढंग से भी प्रशिक्षण दिलाया जाता था। वाजिद अली शाह देसी प्रशिक्षण के हामी थे और इसी पर जोर देते थे। यही कारण है कि उनके यहां बांके, बिन्नौटिये, शहज़ोर, पंजःकश, तेग़ज़न इत्यादि प्रशिक्षण देने वाले उस्ताद फौज में रहा करते थे जो हर रोज़ परेड कराते थे।

मौलाना अहमद उल्ला शाह

"वाजिद अली शाह और उनका अहद" के लेखक रईस अहमद जाफ़री ने अहमद उल्ला शाह का वर्णन विस्तार से किया है। यहां पर संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है।

मौलाना मद्रास के रहने वाले थे उनको मुसलमान रियासतों के तबाह बर्बाद किय जाने और उन पर कब्ज़ा किए जाने का बहुत अफ़सोस था। मैसूर और रंगा पट्टम की इस्लामी हुकूमत ख़त्म हो चुकी थी। रोहेलखण्ड की हुकूमत बर्बाद होकर 1801 ई० में अंग्रेज़ों के क़ब्जे में पहुंच चुकी थी। दिल्ली में मुगलिया चिराग़ टिमटिमा रहा था। मौलाना अहमद उल्ला शाह तालीम के बाद इस्लाहे कौम करना चाहते थे। उन्होंने अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ जेहाद का एलान किया।

वह ग्वालियर गये, देहली पहुंचे और वहां से अवध पहुच कर अपनी शोला बयानी (जोशीले भाषण) से मुसलमानों में जज़्ब–ए–हुर्रियत जगाते रहे। लखनऊ से वह फैज़ाबाद पहुचे और वहां कैद कर लिए गये। 1857 ई० में जब मुजाहिदीन ने फ़ैज़ाबाद का जेल ख़ाना तोड़ा तो वह भी रिहा हो गये। वह लखनऊ पहुंचे जहां वह बेगम हज़रत महल से मिले। वहां की जनता में उनके आने से बड़ा जोश पैदा हुआ। जनता ने उन्हें अपना क़ाइद (नेता) मान लिया।

उन्होंने देसी फौज जमा की और बेलीगार्ड पर हमला कर दिया। जनरल आऊटरम के पास लगभग चार हज़ार फौज थी। उस ने बड़ी होशियारी से मुजाहिदों के ग्रोह का मुक़ाबला किया और तोपें चलवा दीं। मुजाहिदीन क़त्ल हो रहे थे फिर भी दूसरे आ–आकर बार बार हमला करते रहे। जब बेगम हज़रत महल और शहज़ादा बिरजीस क़द्र नेपाल चले गये तो मौलाना अहमद उल्ला शाह ने अपनी बादशाहत का ऐलान कर दिया। उन्होंने तमाम अरकाने दौलत को तलब करके अहकाम जारी

किये और सिक्के ढलवाकर जारी किये। उस पर खुदा था सिक्कः ज़द बरहफ़्त किश्वर खादिमे महराबेशाह, हामि–ए–दीने मोहम्मद अहमद उल्ला बादशाह, अर्थात् अहमद उल्ला शाह दीने मुहम्मदी का मानने वाला है और बादशाहे वक्त का सेवक है। ऐ ख़दा यह सिक्का सातों जहान में कशहूर व मक़बूल हो।

मौलाना अहमद उल्ला शाह ने अंग्रेज़ी कमाण्डर इन चीफ़ को जंग में दुबारा शिकस्त दी, वह बेहद जोश रखते थे, लेकिन पवायां के राजा जगन्नाथ ने धोके से उनको शहीद करके अंग्रेज़ मजिस्ट्रेट को उनका सर पेश करके पचास हज़ार रुपये का इनाम हासिल कर लिया। शाहजहाँपुर के मजिस्ट्रेट ने उनका सर कोतवाली में लटकवा दिया। मौलाना अहमद उल्ला शाह का मज़ार शाहजहाँपुर के कसबा गंज में है। जहाँ लोग आज भी अक़ीदत से हाज़िर होते हैं और उनको शहीद का दर्जा देते हैं।

अजीम उल्ला खाँ

अज़ीम उल्ला खाँ कानपुर के रहने वाले थे, अंग्रेज़ी तालीम हासिल करके उस दौर के अंग्रेज़ीदानों में मुम्ताज़ होगये। नानाराव बिठूर के रईस थे, उनके मुलाज़िम हो गये। वह नाना साहब के सलाहकार की हैसियत रखते थे। वह वकालत के लिए इंगलैण्ड गये वहाँ उन्हें इतना सम्मान मिला कि Prince India कहलाने लगे। वहाँ से फ्रांस गये, उसके बाद कुस्तुनतुनिया का सफ़र किया। वहाँ से वापस आने के बाद वालियाने रियासत बाहमी इत्तेहाद (संगठित होने) की राय दी। उन के ख़तों पर अंग्रेज़ों ने रोक लगादी, उनके ख़तों

के जवाब नहीं मिलते थे, तो उन्होंने नानाराव के साथ पूरे मुल्क का दौरा किया। वह लखनऊ पहुँचे तो बेलीगार्ड के मनसूबे में शरीक हो गए और अमली तौर पर जंग की। मौलवी अहमद उल्ला शाह का साथ दिया लेकिन अपने हाकिम नानाराव के साथ नेपाल चले गये जहाँ 1859 में इन्तेकाल किया।

फ़िरोज़शाह

फ़िरोज़शाह मुग़ल शहजादे थे। उन्हें अंग्रेज़ों से सख़्त नफरत थी। वह अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान में देखना भी पसंद नहीं करते थे। वह आम बादशाहों की तरह शौकीन नहीं थे। वह हज करने के लिए मक्कः शरीफ जाना चाहेते थे इसलिए हज के लिए निकले, जब इन्दौर पहुंचे तो उन्हें समाचार मिला कि हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ बग़ावत शुरू हो गई है। उन्होंने हज का इरादा तर्क कर दिया और सर पर कफ़न बॉधकर मैदान में आ गये। यह जंग सिर्फ़ हिन्दुस्तानी रियासतों को बचाने के लिए थी। उस में उन का कोई स्वार्थ नहीं था। वह ग्वालियर, आगरा होते हुए लखनऊ पहुंचे और अंग्रेज़ों से जंग की लेकिन वहाँ भी उनकी साफ़ निय्यत पर शक किया गया। उन्होंने मुरादाबाद, बरेली, मोहम्मदी, शाहजहाँपुर, संदीला, और लखनऊ पहुंचकर लड़ाई में अपनी जान लगा दी। शहज़ादे ने मौलवी अहमद उल्ला शाह का भी साथ दिया। अंग्रेज़ों के लाख जतन करने के बाद भी वह उन्हें गिरफ़्तार नहीं कर सके।

मौलवी सरफ़राज़ अली शाहजहाँपुरी

इन्हें अमीरुल मुजाहेदीन भी कहा जाता था। आप

शाहजहाँपुर के रहने वाले थे। वहां के बहुत नेक और ईमानदार शख़्स थे। उन्होंने अंग्रेजों के ख़िलाफ़ जंग का ऐलान किया, नौजवानों को जंग के लिए तैयार किया। लोग उनके व्यत्तित्व से प्रभावित होकर मुरीद (शिष्य) होने लगे।

वह अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जंग करके शहादत पाने मे सआदते अब्दी (निजात, मुक्ती) समझते थे। सुल्तानपुर के सूबेदार बख़्त ख़ाँ भी उनके मुरीद हो गये थे।

मौलवी सरफ़राज़ अली मौलवी सय्यद अहमद शहीद बरेलवी के मुरीद थे। उनके ही नक़्शे क़दम पर चलकर उन्होंने जेहाद का ऐलान किया और उन्होंने अपने तौर पर अवध के मुसलमानों में जज़्बः पैदा करके जेहाद पर आमादः (तैयार) किया था। उन्होंने बड़ी इज़्ज़त पाई। वह अवध के लोगों में बडी अज़मत वाले शख़्स थे।

मुंशी रसूल बख़्श काकोरवी

अगर मुंशी रसूल बख़्श काकोरवी का ज़िक्र न किया जाए तो मुजाहेदीने आज़ादी का ज़िक्र अधूरा है।

मुंशी रसूल बख़्श, मुल्ला अबुबक्र हाजी अलवी की औलाद में हैं और शुजाउद्दौला की फौज के सुबेदार फैज़ बख़्श की औलाद हैं। मुंशी रसूल बख़्श काकोरवी की रगों में अवध की हुकूमत से नमक हलाली का ख़ून दौड़ रहा था। उनको इस रियासत से बेपनाह मुहब्बत थी, इस हुकूमत पर अंग्रेज़ों के जुल्म उनके लिए नाक़ाबिले बर्दाश्त थे।

नवाब की माज़ूली (हुकूमत से बे दख़्ल करना) पर उनकी फ़ौजें भी माज़ूल की गईं। मुंशी साहब ने उन अफ़वाज

(फ़ौजों) को जमा किया। वह अंग्रेज़ी फ़ौजों का तख़्ता पलटना चाहते थे। उन्होंने इस काम के लिए अंग्रेज़ी छावनी में जाकर देसी अफ़सरान को अपना हम ख़्याल किया और अंग्रेज़ों के खिलाफ़ उनके जज़्बात भड़काए।

जहाँ–जहाँ अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ तहरीकें (आन्दोलन) चल रही थीं, वहाँ–वहाँ वह खुद गये या पत्राचार से बाग़ियो मे इत्तेहाद पैदा किया। मुंशी साहब अंग्रेज़ों की साज़िशों से ही उन्हें मात देना चाहते थे। इसी लिए उन्होंने अच्छे ताल्लुकात पैदा कर लिए, लेकिन उन्हीं में से एक पुलिस इन्स्पेक्टर लालच में आगया और उसने मुख़ बरी कर के मुंशी साहब को उन के लड़के अब्दुल समद और दूसरे ख़ानदान के लोगों के साथ गिरफ्तार करवा दिया जिन को पीर मोहम्मद साहब के टीले पर फाँसी देदी गई। मुंशी साहब के दूसरे लड़के छुप के जिन्दगी गुजारते रहे, बाद में आम माफ़ी के बाद अब्दुल हई साहब लखनऊ में वकालत करने लगे और इज़्ज़त पाई।

जाने आलम की अच्छाइयों पर एक नज़र

वाजिद अली शाह बहुत नर्म मिज़ाज आदमी थे, साहित्य कला के प्रेमी, संगीत प्रेमी, नृत्य के माहिर, अदीबों शायरों को इज्ज़त बख़्शने वाले बादशाह, ठुमरी के जन्मदाता, नफ़ासत पसंद, जानवरों के दोस्त, बाग़ों के शौक़ीन हरदिल अज़ीज बादशाह और इन्साफ़ पसंद होने के साथ–साथ कुछ कमियां भी थीं लेकिन उन की कमियों को ज़्यादा उजागर किया गया है क्यों कि वह सियासत (पॉलिटिक्स) से ना आश्ना थे। इसीलिये अंग्रेज़ों ने हसीन अवध को खण्डरात में बदल दिया।

उन की तमाम ख़ूबियां दब गईं और उनके दुश्मनों ने उनकी हुकूमत को नज़र लगादी। अंग्रेज़ों ने उन्हें समाज के सामने बुरा बनाकर पेश किया। जहां उनके गुन गाये जाते थे वहां उनके लिए बुराइयों के बीज डाल दिये गये। उनको और उनके किरदार को बिलकुल गिराकर पेश किया गया। इस मे उनकी लिखी हुई किताबें थीं वही जो उन्होंने अपने तौर पर शायराना ईमानदारी से लिखीं उन के व्यत्तित्व की ख़राबियां उजागर कर ने लगीं जैसे परीख़ाना, हुज़्ने अख़तर, बन्नी, नाज़ो, दुल्हन आदि।

इन्हीं किताबों से उन्हें बद किरदार साबित किया गया। इसी कारण उनसे मोहब्बत और अक़ीदत रखने वालो में नफरत भर दी गयी।

ये एक आम ख़्याल था जिसकी वजह से वह बदनाम हुए जब कि वाजिद अली शाह की ज़िन्दगी के और भी पहलू हैं जो उनको बिलकुल बदल कर पेश करते हैं। अगर उन्हें उस दौर के लोगों के चश्मे से न देखा जाय और सच्चाई तलाश की जाय तो उन की सी ख़ूबियां (विशेषताएं) उन से पहले किसी मे भी नहीं थीं।

- वह हिन्दुस्तानी तहज़ीब के अलम्बरदार थे, और हिन्दु मुस्लिम एकता जो अवध में देखने को मिलती है उन्हीं की देन है।
- ये कि — वह रहम दिल बादशाह थे, उन्होंने कभी किसी पर जुल्म नहीं किया।
- ये कि — वह नर्म मिजाज बादशाह थे, गुरूर बिल्कुल नहीं था हर व्यक्ति आसानी से उनसे मिल सकता था।
- ये कि — इन्साफ़ पसंद बादशाह थे, उनकी सवारी के साथ

चॉदी के दो सन्दूक़ (बक्से) चलते थे। जिन में लोग अपनी शिकायत और ज़रूरतों की अरज़ियां डालते थे, इन सन्दूको को वह खुद खोलकर अर्ज़ियां देख कर फ़रियाद करने वाले की ज़रुरत पूरी करते थे।

ये कि–वह मआशियात (बैंकिगं प्रणाली) के माहिर थे। उन्होने प्रबन्ध किया, तहसीलों में रद्दो बदल किया और आखीर में निज़ामतें और तहसीलें खत्म कर के सिर्फ़ एक मरकज़ी तहसील (केन्द्रीय तहसील) "हुज़ूर तहसील" बाक़ी रख्खी। तमामकर पर खज़ान–ए–आमरए सुलतानी में जमा होते थे जो शाही ख़ज़ाना था।

ये कि – वह एक अज़ीम सिपहसालार थे, वह फ़ौज की तरबियत (प्रशिक्षण) पर बहुत ज़ोर देते थे। वह फ़ौज की परेड स्वयं देखते थे और अकसर छः–छः घंटे घोड़े पर सवार रहते थे। उन्होंने अपनी फ़ौजों के हिन्दुस्तानी नाम रख्खे थे और अहकाम (आदेश) भी हिन्दी में ही देते थे।

वह निडर, खुद मुख़्तार और किसी की परवाह न करने वाले बादशाह थे।

उन्हें अंग्रेज़ों से नफ़रत थी, वह कभी रेज़ीडेन्ट की परवाह नहीं करते थे, और न ही उनके मश्वरों पर अमल करते थे। उन्होंने हिन्दुस्तान की दूसरी रियास्तों से स्यासी (राजनीतिक) ताल्लुक़ात क़ाइम किए।

- वह साहित्य–कला के प्रेमी थे, शायरी, संगीत, ड्रामा एव दूसरी कलाओं की परवरिश करते थे।

-वह फने मुसव्वरी (चित्रकारी) ख़त्ताती, एवं वास्तु कला मे अपनी मिसाल आप थे।

12-उन्होंने समाज में एकता क़ायम करने के लिए मेलों का आयोजन कराया, ड्रामों के माध्यम से हिन्दु–मुस्लिम एकता और तहज़ीब को फैलाने में बेमिसाल कोशिश की।

13-वह हुस्न परस्त थे, और हर शै में हुस्न देखना उन की फ़ितरत थी।

14-वह साफ़ गो और सच्चे शायर थे, ख़्यालात और वाक़ेआत (घटनायें) बिना झिझक उनकी असली शक्ल में पेश कर देते थे।

15-वह वसीउलनज़र (दूरदर्शि) थे, उन्होंने जितनी इनायात मुसलमानों पर कीं उतनी ही हिन्दुओं पर मेहरबानियां की।

16-वह एक बड़े अदीब थे, उन्होंने बहुत सी किताबें लिखीं।

17-वाजिद अली शाह धर्मिक सिद्धान्तों का पालन करते थे। नियमित रुप से प्रतिदिन वह पांच समय नमाज़ पढ़ते थे। रमज़ान में रोज़े रखते थे। मुहर्रम में ताज़ियादारी भी करते थे।

8-उन्हें चरिन्द व परिन्द से बेहद मोहब्बत थी उन्होंने हिन्दुस्तान का पहला चिड़ियाघर क़ाइम किया जब कि वह कलकत्ते मे उस समय बादशाह भी नहीं थे।

9-उनके वज़ीर अली नकी खाँ ने एक हिन्दु बेवा की ज़मीन ठाकुरगंज में ज़ब्त करली तो उन्होंने उसकी ज़मीन वापस दिलाई। किसी ग़रीब को एक मन्दिर बनवाने के लिए रुपये दिये। वाजिद अली शाह "बड़े मंगल" पर भी दिल खोलकर रुपये खर्च करते थे जिसमें उनकी तरफ़ से एक "ब्रह्म भोज" भी होता था। उन्हीं के ज़माने में लखनऊ में बहुत से मन्दिरो की मरम्मत भी कराई गई और मन्दिर बने भी।

वाजिद अलीशाह की बेगमात के लिये अहकामात

जहा वाजिद अली शाह की बेगमात बहुत थीं वहीं उनके रहने, सहने, उठने, बैठने की चर्चाओं के साथ यह भी मिलता है कि जाने आलम ने अपनी बेगमात के लिये कुछ अहकामात सादिर किये थे कि वह जाने आलम के सामने किस तरह आया करें। वाजिद अली शाह ने अपनी पुस्तक 'बन्नी' में बीस अहकामात दिये हैं :

1- हमेशा बन्ने को खुश रखें।

2- धुला हुआ उजला कपड़ा पहना करें, मैली और धब्बेदार फटी पौशाक, ख़्वाह पैजामा, ख़्वाह दुपट्टा ख़्वाह छोटे कपड़े न पहना करें।

3- पौशाक, हाथ, मुंह में हरगिज़ किसी तरह की बू न आने पाये।

4- पांव और तलुए हमेशा आईने की तरह साफ़ और चमकते रहें किसी तरह की मैल और गंदगी न हुआ करे।

5- बालों में खुशबू, तेल और आँखों में काजल, सुरमा और हाथों में पहुंचों तक मेंहदी हमेशा लगी रहा करे।

6- जो कुवांरियां हैं वह बग़ैर हुक्म अज़खुद न मिलें और जो खुद मिल सकती हैं उनको कुछ हर्ज नहीं।

7- कोई बुलाक़ छेदने का इरादा न करे क़तई मुमानिअत है।

8- कोई तम्बाकू और हुक़्क़ा पीने का इरादा न करे।

9- कोई पैरों की उगंलियों पर नाख़ूनो और तलुओं पर नक़्शो निगार न बनाये।

10- बुलाने के वक़्त जल्द से जल्द हाज़िर हुआ करें।

11-बेबाक और बेहिजाब (बेशर्म) के हाज़िर हुआ करें।

12-मिज़ाज पुर्सी के लिय एक–एक आयगी और मिज़ाज पूछेगी उसे दूर जवाब दिया जायेगा।

13-तुम्हारी आमदो–रफ्त के मुलाहिज़े को जवाहरे दिल और खास मंज़िल में आकर बैठता हूं और तुम साहिबों ने यह रवय्या इख़्तियार किया है कि अकसर मेरे सामने चलना फिरना बचा जाती हो, अकसर ज़रूरतन कोई जाता है और जाता भी है तो वहां से फ़िर हट कर मेरी तरफ अपने मकान पर नहीं आता है, वल्लाह आलम किधर को चला जाता है, जैसा कि एक दिन नवाब साहिबा, बेगम साहिबा और उनकी अल्ला जिलाई मेरे सामने से मिज़ाज पूछकर अव्वल गयीं शायद एक बजा होगा, फिर मैं चिराग़ जले तक देखता रहा वह पलट कर नहीं आईं। मुझे बहुत बुरा लगा। तुम सभों को लाज़िम है कि अपनी आमदो–रफ़्त ज़रूरी से हमारी आंखों को महरूम न किया करो। हमको खुशनूदी है, नाराज़ होकर दूसरे मकान में जाने की मुमानिअत यूं है कि अपने घर को पलट कर आओ।

जब ख़िलवत में हमारे पास आओ तो किसी भी तरह की बातें हम से किये जाओ वरना हमारी नाराज़गी का बाइस होगा और किसी भी तरह का जब्र न किया करो चाहे बैठो चाहे लेटो।

15- खाना पकाने का वक्त हमारे दिमाग़ को बेचैन करता है। हमारे पास रह कर शोर मत किया करो।

16- नाख़ून बड़े न हों हर जुमा नाख़ून तरशवाओ।

17- हंसी की बात पर हंसा करो बे सबब न हंसा करो।

18- सब से बड़ी उम्मीद यह है कि अपनी ख़्वाहिशे नफ़्सी को बेहिजाब फ़ौरन हम से कहला भेजा करो कि इराद–ए–

दिल फकत इस पैग़ाम से पहाड हो जायेगा। ख़्वाह हम बुलाऐं ख़्वाह न बुलाएं, मगर दिल में तो घर होगा।

19- जो इल्म (शिक्षा) हम दें उसे दिल लगाकर सीखो। उस वक्त बिला ज़रूरत घड़ी–घड़ी पेशाब का बहाना बनाकर मत जाया करो, बहुत कम खाओ, कूदना, उछलना न करो, दांत साफ रखो, छालियां (डली) आवाज़ की दुश्मन हैं। अगर हमारे लिखने पर दारोग़ा लोग बेगमात को चलाऐं तो हम ऐहसान मन्द उन उहदे दारों के होंगे।

20- दो उंगल खड़ाऊँ ज़मीन से ऊँची हो। उसे दारोग़ा लोग ऐहतेमाम से बनवा दिया करें। अगर इस हुक्म में ख़िलाफ हुआ तो एक खड़ाऊँ जुर्माना होगा।

कहा जाता है कि बादशाह के कुल तीन सौ पैंसठ बेगमात थीं। एक अन्य मतानुसार इन बेगमात की संख्या कुल 60-70 के लगभग थी। परन्तु इन सभी के नाम ज्ञात करना अत्यंत कठिन कार्य है। उन सबके नाम आज हमें ज्ञात भी नहीं हैं। बहरहाल उनकी जिन प्रमुख बेगमात के नाम ज्ञात हैं, हम यहॉ पर उनका ही उल्लेख करेंगे। बादशाह की प्रमुख बेगमात के नाम इस प्रकार हैं :

1- ख़ास महल आलमआरा बेगम "आज़म बहू" साहिबा
2- रौनक़ आरा बेगम "अख़्तर महल" साहिबा
3- माशूक़ महल,
4- सिकन्दर महल,
5- हज़रत महल
6- सरफ़राज़ महल

7- मुमताज़ महल
8- कैसर महल
9- निशात महल नवाब सुलेमान महल साहिबा
10- फ़रख़न्दा ख़ानम साहिबा
11- नवाब इज़्ज़त महल
12- निगार महल
13- महबूब महल
14- उम्दा महल
15- शहंशाह महल
16- सुल्तान जहाँ महल
17- उमराव महल
18- यास्मीन महल
19- ख़ुसरो महल
20- दीदार महल
21- शैदा महल
22- अमीर महल
23- आशिक़ सुल्तान महल
24- ख़ुज़िश्ता महल
25- नवाब महल साहिबा
26- रश्क़ महल
27- ऐश महल
28- उल्फ़त महल
29- शहनवाज़ महल
30- दिलफ़रोज महल

31- बेनज़ीर महल

32- आ़लम अफ़रोज़ महल

33- दिल नुमा महल

34- विलाइती महल

35- मुबारक महल

36- शबाब महल

37- सग़ीर महल

38- मंसूर महल

39- असग़र महल

40- दिलरुबा महल

41- जाने जाँ बेगम

42- जाफ़री बेगम

43- ताजुन्निसा बेगम

44- नवाज़ी बेगम

45- फ़ातिमा बेगम

46- हूर बेगम

47- ज़ेबुन्निसा ख़ानम

48- अजाइब ख़ानम

49- फ़िरोज़ा दिलदार परी

50- हुज़ूर परी

51- नवाब मुग़ल साहिबा

52- नूर अफ़शां परी

53- बिलक़ीस परी

54- साहिबा खानम

55- नवाब आबे–रसां बेगम

56- नवाब मुसफ़्फ़ा बेगम

57- माहरुख़ परी

58- इम्तियाज़ परी आदि–आदि।

(1) नवाब ख़ास महल, मुक़द्दर अज़्मा बादशाह महल आलम आरा बेगम साहिबा : वह वाजिद अली शाह की प्रथम पत्नी तथा ख़ास महल थीं। उनके पिता का नाम सैयद नवाब अली खा तथा माता का नाम बराती ख़ानम था। नवाब अली खां दिल्ली के मुग़ल परिवार के नवाब मदारुद्दौला प्रथम सैयद यूसुफ अली ख़ां के पोते थे। जानी ख़ानम नामक एक मशहूर मुश्शातः (संदेशवाहिका) के प्रयास से आ़लम आ़रा बेगम का विवाह वाजिद अली शाह से होना तय हुआ। बात तय होते ही 1836 (1252 हिजरी) के अंत में दुल्हा–दुल्हन को माँझे बिठा दिया गया लेकिन दुर्भाग्य से कुछ दिन बाद दुल्हन की चाची तथा दुल्हे के चाचा की मृत्यु हो गयी, जिससे विवाह दो महीने बाद जनवरी 1837 में बड़ी सादगी से सम्पन्न हुआ। ससुराल मे आलम आ़रा बेगम को "आज़म बहू" का ख़िताब दिया गया।

(2) रौनक़ आ़रा बेगम "अख़्तर महल" साहिबा : रौनक़ आ़रा बेग़म वज़ीर सैय्यद अली नक़ी खां हुज़ूरे आ़लम व उनकी बीवी गौहर आरा बेगम की बड़ी पुत्री थीं। दरबार में अपना सिक्का जमाने के लिए वज़ीर ने अपनी बेटी वाजिद अली शाह को ब्याह दी थी। यह लड़की ख़ास महल आरा बेगम की चचेरी बहन थी। यह शादी 7 जून 1851 को सम्पन्न हुई थी। नई दुल्हन जब ससुराल आई तो जाने आलम ने उन पर अपना

तखल्लुस "अख़्तर" निछावर कर दिया और उन्हें "नवाब अख़्तर महल साहिबा" का ख़िताब दिया।

(3) माशूक़ महल : उन्होंने माशूक़ परी के रूप में परीख़ाने में प्रवेश किया था। गर्भवती होने के बाद उन्हें 'महल' का दर्जा प्रदान कर दिया गया। मुहर्रम की नौ तारीख़ को पुत्र का जन्म हुआ। अमजद अली शाह ने अपने पोते को मिर्ज़ा फ़रीदूँ क़द्र बहादुर का ख़िताब दिया। इसकी शादी 21 अक्टूबर, 1851 को हुई थी। इस शादी का सारा इन्तेज़ाम शरफ़ुद्दीन गुलाम रजा ख़ां ने सँभाला था। तीन दिन तक क़ैसरबाग़ के कुल महलों पर रोशनी की गई। 22 अक्टूबर को जब वाजिद अली शाह ने फ़रहत बख़्श में दावते वलीमा (बहू–भोज) दिया तो उसमें शिरकत करने के लिए ब्रिटिश रेज़ीडेंट भी तशरीफ़ लाए थे।

मिर्ज़ा फ़रीदूँ क़द्र को वज़ीर सैयद अली नक़ी ख़ां की छोटी बेटी नवाब अज़मत आरा बेगम ब्याही गई थीं। इधर यह बन्ना अपने बाप का चौथा बेटा था तो उधर बन्नी भी अपने बाप की चौथी बेटी थी। मजा तो यह है कि इसी लड़की की बड़ी बहन रौनक़ आरा बेगम (अख़्तर महल) नौशे के बाप को पहले ही ब्याही जा चुकी थीं और अब ये दोनों बहनें आपस में सास–बहू बनकर महल में रहती थीं। इस बहू को ससुराल में "फ़ग्फ़ूर बहू" कहा जाता था।

(4) सिकन्दर महल : उनका वास्तविक नाम उमराव बेगम था। वह लखनऊ में चौक की निवासी उम्दा ख़ानम की बेटी थीं। वह बड़ी हसीन थीं और मुजरा किया करती थीं। हज़रत इमाम हुसैन की सालगिरह पर एक बार वली अहद वाजिद अली शाह

ने उनके मुजरे को देखा और उन्हें पसन्द कर लिया। कुछ समय बाद युवराज ने उनसे विवाह कर लिया और उन्हें बेगम सिकन्दर महल का ख़िताब दिया।

जब वाजिद अली शाह बादशाह बने तो सिकन्दर महल ज़र्रे से आफ़ताब हो गईं। तीन हज़ार रुपये मासिक उनको ख़र्च के लिए मिलने लगे और "हबीबउल–सुल्तान मुकर्रमुल ज़मानी जनाब सिकन्दर महल बेगम साहिबा" का खिताब मिला।

कुछ समय बाद बेगम की खुशी और शहर में यादगार छोड़ देने की ग़रज़ से उस ज़माने के 5 लाख रुपये की लागत से बादशाह ने एक आलीशान "सिकन्दर बाग़" बनवाया जो वर्तमान लखनऊ में राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान के नाम से प्रसिद्ध है। इस बाग़ को बनाने और सजाने सँवारने में पूरा एक वर्ष लग गया था।

सिकन्दर महल बादशाह की बीवी तो थी हीं, परन्तु बाक़ायदा निकाह न होने के कारण वह दुखी रहती थीं। आखिर में उनकी ज़िद के कारण बादशाह ने उनसे विधिवत् निकाह किया जिसके कुछ ही दिन बाद वह बे औलाद चल बसीं।



*मुत्आई बीविया

महलात

यानी ममतूआ बीवियां जो साहिबे औलाद थीं।

1- फ़ख़रे महल

2- नाजुक महल

3- ख़ाक़ान महल

4- उल्फ़त महल

5- मुम्ताज़ महल आदि

बेगमें जिनसे औलाद नहीं हुई

1- अफ़ज़ल बेगम

2- चुन्दरी बेगम

3- मेहरू बेगम

4- चमन आरा बेगम आदि

खुलूक़्यान

जिन से मुत्आ कर लिया गया था मगर जो बाज़ अदबी क़िस्म की ख़िदमात भी अनजाम देती थीं,

1- मुसक्क़ा बेगम

2- आबे रसां बेगम

3- आबदार जान बेगम

4- अमीनी जान बेगम आदि

***रिपोर्ट नम्बर 228 दिनांक 6 जनवरी 1888 ई० पेश करदा लेफटिनेन्ट कर्नल डब्लू०एफ० प्रेडाक्स रेज़ीडेन्ट गर्वनर जनरल बराए मामलाते शाहे अवध मरहूम बख़िदमते सेक्रेटरी गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया मोहकमा ख़ारजा में लिखा गया**

हज़रत महल

मेरी जान है यार हजरतमहल,
हसीन तरहदार हज़रतमहल।

फ़कीराने गुलशन पे आई खेज़ा,
शहे हुस्ने गुलजार हज़रतमहल।

लिखा वस्फ़ जिस्म तिलाफाम का,
हुए हम भी ज़रदार हज़रत महल।

घरों पर तबाही पड़ी शहर मे,
खुद मेरे बाजार हज़रत महल।

शहे हुस्न बन्दा बना नाज़ का,
मेरी है सज़ावार हज़रतमहल।

तुई बाईसे ऐश–व–आराम है,
गरीबों की ग़म ख़्वार हज़रतमहल।

हलब सदक़ा रूख़ पर ख़तन ज़ुल्फ़ पर,
फिदा मुह पे–तातार हज़रतमहल।

मेरे ख़त के हमराह हूं वाह–वाह,
तेरी रात के हार हज़रतमहल।

*

ज़ुबां पर है हरदम मेरे नामें इश्क़,
मेरी जान, दिलदार, हज़रतमहल।

हमीदा ख़सायल सतूदा सिफ़ात,
परी रौ, खुश अतवार हज़रतमहल।

अभी डर से छुपजाय सारा जहां,
अगर तू पलक मार हज़रतमहल।

कहां है, कहां है, कहां है, कहा,
अरे अख़तरे ज़ार हज़रतमहल।

एक दूसरी नज़्म :–

पसीना था खुशबू में उसका गुलाब,
परी थी महक उसने पाया ख़िताब।।

(परीख़ाना– वाजिद अली शाह)

हजरत महल महकपरी : वह वाजिद अली शाह की सबसे प्रसिद्ध तथा बहादुर बेगम थीं जिन्होंने 1857 की जंगे आजादी के दौरान लखनऊ में स्वदेशी क्रांतिकारियों का नेतृत्व करते हुए अंग्रेज़ों से युद्ध किया था। उनका जन्म फैज़ाबाद के एक गरीब परिवार में हुआ था। रजिस्टर आफ़ माफ़ी डिस्ट्रिक्ट लखनऊ के पृष्ठ संख्या 193 से पता चलता है कि बेगम हजरत महल के पिता अम्बर फर्रूख़ाबाद के नवाब गुलाम हुसैन खा के गुलाम थे और माता मेहर अफ़ज़ा नवाब गुलाम हुसैन खा की ख़्वास थीं। वह बचपन से ही अत्यधिक सुन्दर और आकर्षक थीं। वाजिद अली शाह के युवराजत्व काल में टम्मन और इमामन नामक दो कुटनियों के द्वारा, वे परीख़ाने मे वाजिद अली शाह की एक सालगिरह पर एक तोहफ़ः के रूप मे तथा नृत्य कला व गीत--संगीत सीखने के लिए लाई गई थीं। तारीख़े अवध में लिखा है "जब शाबान का महीना ख़त्म हुआ और 13 रमज़ान आया तो महल में मजलिसें आरास्ता (सजी) हुईं, पूरा मकान सरापा नूर का घर था। मज़ेदार ख़ाने दस्तरख़्वान पर चुने हुए थे, वाजिद अली शाह अच्छा लिबास, जेवरात, आरास्ता करके बैठे थे, जब रहस की शुरूआत हुई, तो उसी वक़्त एक नाईका जिस को ऊमदा ख़ानम कहते थे उमराव नाम की हसीना को लेकर आई! वह वाजिद अली शाह की नज़रों में जम गई और महल में दाखिल कर ली गई। उसी ने बाद में हज़रत महल का ख़िताब पाया। वाजिद अली शाह ने इस रूपसी को *"महक परी"* का ख़िताब दिया था।

विसाअत जो अम्नो–अमां मन ने की,।
मेरे घर में आई जने ख़्वानगी।।
पसीना था खुशबू में उसका गुलाब।
परी थी महक उसने पाया ख़िताब।।
लगी होने तालीमे रक़्सो सुरुद।
शबो रोज़ तफ़हीमे रक़्सो सुरुद।।

परन्तु यह परी नृत्य एवं संगीत के क्षेत्र में बहुत अधिक न सीख सकी। समय बीतने के साथ–साथ जब महक परी के गर्भवती होने की ख़बर मिली तो वाजिद अली शाह ने उन्हें "इफ़्तिख़ारुन्निसा ख़ानम साहिबा" की उपाधी दे दी। सन् 1845 ई. (1261हि०) में रमज़ान के महीने में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम *मिर्ज़ा रमज़ान अली* रखा गया। इस अवसर पर बच्चे के दादा अमजद अली शाह ने विशेष ख़ुशी का इज़हार करते हुए ग्यारह तोपों की सलामी दिलवाई और बालक को *"मिर्ज़ा बिरजीस क़द्र बहादुर"* का खिताब दिया। वाजिद अली शाह ने अपनी ओर से नाच गाने की एक विशेष महफ़िल सजवाई जिसमें नृत्य कला का बहुत सुन्दर प्रदर्शन लोगों के मनोरंजन हेतु प्रस्तुत किया गया। मिर्जा बिरजीस क़द्र की पैदाइश के मुताबिक़ सुलताने आलम खुद भी लिखते हैं:

अजब नज़्मे तालेअ़ ने की बरतरी,
हुई हामला जो महक थी परी।

सुना जिस घड़ी मुज़्द–ए–दिल पज़ीर,
किया सज्द–ए–शुकरे रब्बे क़दीर।

बहुत इस परी रू का रूतबा बढा,
कि पाया ख़िताब इफ़्तेख़ारून्निसा।

हुई परद–ए–शर्म में जां ग़ुज़ीं,
ज़ने ख़ाना बेहतर है परदह नशीं।

ग़रज़ मुद्दते हम्ल आख़िर हुई,
खुशी बादे नौ माह ज़ाहिर हुई।

वह तिफ़्ले ख़ुश इक़बाल पैदा हुआ,
कि जिस पर खुद इक़बाल शैदा हुआ।

हुए शाद जन्नत मकां सुनके हाल,
खुशी से हुआ रुए पुर नूर लाल।

हुआ जश्ने शाहाना आरास्ता,
हुई फ़िक्र दुनिया की बरख़ास्ता।

मुबारक मुबारक की हरसू सदा,
कोई रक़्स में कोई सर्फ़े ग़िना।

मसरर्त के सामाँ ख़ुदा ने दिये,
परी पैकरों ने तमाशे किये।

ख़िताब उनका रौशन है मानिन्दे बद्र,
यह मिर्ज़ा बहादुर हैं बिरजीस क़द्र।

मिर्ज़ानी बेगम ने बच्चे की परवरिश की। जब तालीम के काबिल हुए तो मौलवी गुलाम हुसैन बराय तालीम मुकर्रर हुए। बादशाह बनने पर वाजिद अली शाह ने बिरजीस कद्र की माँ को "नवाब बेगम हज़रत महल साहिबा" का ख़िताब प्रदान किया। "हुज़्ने अख्तर" में वाजिद अली शाह ने अपने बेटों का तजकरह करते हुए बिरजीस कद्र को अपना शहज़ादा तसलीम किया। मसनवी में बादशाह वाजिद अली शाह लिखते हैं:--

जो वह चौथा शहज़ादा है रश्के बद्र।
उसे लोग कहते हैं बिरजीस कद्र।।

वह चौदह बरस का है कुछ शक नहीं।
कहूं क्या कि है वह कहीं का कहीं।।

मिलाऊँ जो हज़रत से लफ़ज़े महल।
तो नाम उसकी माँ का खुले बरमहल।।

जो बिगड़ी थी आगे से अंग्रेज़ी फ़ौज।
उसे ले गई जैसे दरिया की मौज।।

वह मैह, कब्ज--ए--इज़तिराबी में आह।
बनाया है अपना उसे बादशाह।।

बादशाहत छिन जाने के बाद जब वाजिद अली शाह कलकत्ते जाने लगे तो बेगम हज़रत महल उनके साथ नहीं गयीं। उन्होंने यहीं रहकर सन् 1857 की क्रांति में भाग लिया और अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ संघर्ष किया।

लखनऊ शहर में क्रांति का ज़माना था। नवाब वाजिद अली शाह अपने ताजु–तख़्त से हाथ धोकर कलकत्ता जा चुके थे। यहां बाक़ी थी उनके ख़्वाबों की जन्नत, उनका कैसरबाग, उनकी दौलत और उनकी बेगमात।

उसी ज़माने की एक दोपहर के वक़्त ब्रिटिश चीफ कमिश्नर, कई अफ़सर और दो तोपें मय गोल–अन्दाज़ लेकर महलसरा में दाख़िल हुआ। वहां हिफ़ाज़त के लिए हिसामुद्दौला साहब तैनात थे, उनसे कहा, "मियां, अंग्रेज़ी फौज फ़ैज़ाबाद के करीब आ गई है, भला इसी में है कि रास्ता छोड़ दो।"

22 सन्दूक़ लालु–जवाहर, 23 ताजे शाही, बेशुमार नगीनेदार तमाम तोड़े अशरफ़ी के, तख़्तेशाही, सोने और रतन जडे बेशकीमती हथियार, सोने–चाँदी के बरतन, कामदार बक्से, वेनिस और स्पेन के गढ़े गहने, पुरतकल्लुफ़ सजावटी सामान, कीमती क़ालीन, बेल्जियम के झाड़–फ़ानूस, सुनहरे फ़्रेमों वाले आईने, बेहतरीन पेंटिंगस, क़लमी किताबें, ज़री कारचोब, ज़रबफ्त और कमख़ाबी कपड़े, महंगे परचम और फिर तमाम वह चीजे, जिनका लिखना मुश्किल है।

बेगमात महलों में चीख़ीं–चिल्लायीं, "हाय–हाय, गोरे हमारे बादशाह का घर लूटने आये हैं" .....

चीफ़ साहब बोले, "शहर में जो बाग़ी फ़ौज तैयार हुई है उसके ख़्याल से ये मालोज़र हम अपनी निगरानी में लेते हैं क्योंकि और किसी से इसकी हिफ़ाज़त मुमकिन नहीं"....

18 कोठियों की सजावट का कुल सामान लुट गया और इस तरह लाखों का घर लीखों का घर हो गया।

बेगम हज़रत महल ने अपने बेटे बिरजीस क़द्र के सर पर ताज रखा और हुकूमत की बागडोर अपने हाथों में ले ली। अंग्रेज़ों को भला यह कब बर्दाशत होता।

जंग जारी थी। जानें जा रही थीं, ख़ून बह रहा था और मौलवी डंकाशाह अंगारे उगल रहे थे .....

जनरल आउटरम ने मिर्ज़ा अली रज़ा कोतवाल के जरिये पयाम क़ैसरबाग़ भेजा जनाब आलिया (हज़रत महल साहिबा) की ख़िदमत में, उनके नाइब शरफुद्दौला मुहम्मद इब्राहिम ख़ां को, दरबारे बिरजीस क़द्र में :

"आपको आपका हक़ मिलेगा, यह लड़ाई ख़त्म कर दीजिए। हम लखनऊ शहर से बाग़ियों को निकाल देंगे, लेकिन आपका हाथ न रहे, साथ न रहे, साथ ही आपके घर–वालों को जो कलकत्ता और लन्दन चले गये हैं, लखनऊ बुला लिया जायेगा।"

"हम को ख़ूब मालूम है, बे–फ़ौज समझकर मिर्ज़ा मुन्ना जान की तरह हमें गिरफ़्तार करके ले जाया जायेगा।"

आख़िर अंग्रेज़ परस्त कोतवाल घर लौट गया–यह जानकर कि अब सब की मौत है, शहर में क़यामत अनक़रीब है .

अगली सुबह मनादी हुई "रिआया बदहवास और परेशान न हो, गोरे मारे जा रहे हैं और जो बाक़ी हैं वह भी तमाम हुए जाते हैं"....

किसी ने किसी बात को कान नहीं दिये। वही अफ़रा तफरी मची रही। दूसरे दिन बागी फौज जमा हुई और दरिया

किनारे गऊघाट से धावा बोल दिया यह कहते हुए कि "आज कैसरबाग़ से फ़िरंगियों का साया भी दूर कर देगें वरना मुंह न दिखायेंगे।"

चौलक्खी कोठी में हज़रत महल साहिबा तक ख़बर आई कि फ़ौज ने धावा बोलकर गोमती पार कर, बादशाह बाग ले लिया चार तोपें इंग्लिस्तानी छीन लीं..अब कैसरबाग पर से बरतानवी कब्जा हटने को है, बड़ी ख़ुशी हुई।

अगली ख़बर–धावा उलट गया ..... बाग़ी तितर बितर हो गये ... मोरचे छूट गये ..... गोरे बड़े इमामबाड़े की छत पर चढ गये हैं, कंगूरों पर टंगी लौंगें टूट रही हैं..... जामा मस्जिद के गुलदस्तों से गोलियाँ बरसायी जा रही हैं .... आगे नजर हुसैनाबाद पर है।

मौलवी अहमदुल्ला शाह ने तिलंगे जमा करके अपने कामदार फ़ीरोज़शाह से कहा, "तुम पत्थर पुल से चढ़ाई करो, मैं ऐशबाग़ से हमला करता हूं..... तलवारबाज़ी शुरू हो गई। लेकिन जब अंग्रेज़ी कुमक आई, पाँव उखड़ गये.....

शाम तक गोरे चौक की मछली वाली बारादरी से लेकर अकबरी दरवाज़े की घनी बस्तियों तक फैल गये... सारी रात गोले दहकते रहे और गोलियों की बरसात होती रही...

रिआया काकोरी कसमण्डी की तरफ़ भागी .... कोई परिन्दा आसमान पर नज़र नहीं आता था। दरख़्तों से दहशत टपक रही थी।

परदह नशीन औरतें परदे का होश खो बैठीं थीं... ख़ूने नाहक़ की बू फैल गई, और सर की चादरें उतर गयीं यानी

मुसीबत की वह घड़ी जब बडे–बड़े आशिक़ इश्क़ करना भूल जायें, लखनऊ की क्रांति और कैसरबाग़ की लूट ने यही तसवीर चरितार्थ कर दी थी।

जिस वक्त कैसरबाग़ लूटा गया बेगमाते–अवध जिनकी सूरत को सूरज–चाँद तरसते थे, नंगे पैरों जंगलों की ख़ाक छानने को निकल पड़ी थीं।

शहर में कॉलिन कैम्पबेल का पॉव पड़ते ही लखनऊ मे अफ़रा तफ़री मच गई थी। सिकन्दरबाग़ की ज़मीन इन्सानो के लहू से सुर्ख़ हो चुकी थी। बेगम कोठी में जवान लाशे बिखरी पड़ी थीं और कैसरबाग़ लुट चुका था।

गोरे लूट में लगे थे और इसी बीच हज़रत महल अगर अपने फ़रज़ंद को लेकर निकल न जातीं तो कुछ अजब नही कि गिरफ़्तार हो जातीं। पहली मार्च को बेगम ने नगर से पैर निकाला था और 8 मार्च को लखनऊ पर अंग्रेज़ी कब्ज़ा हो गया। शहर पर फ़िरंगियों के बढ़ते हुए असर को देखकर ही मशहूर क्रान्तिकारी मौलवी अहमदुल्ला शाह (नक़्क़ारा शाह) ने 23 दिन की लगातार जंग में अपनी जान गवां कर बिरजीस कद्र की जान बचायी थी और उन्हें अपनी मॉ के साथ निकल जाने का पूरा मौक़ा दिया था।

बेगम का सफ़र चौलक्खी कोठी से

यह पहली मार्च, 1858 का दिन था, बहुतों ने उसे 16 मार्च, 1858 की तारीख़ माना है। जिस वक़्त जनाबे आलिया "चौलक्खी कोठी" को छोड़कर घसियारी मण्डी वाले फाटक से बाहर निकलीं' शहर में पानी कूट–कूट कर बरस रहा था

बिरजीस क़द्र एक बूढ़े सैयद की गोद में कन्धे से चिपटे हुए थे और उन पर एक ग़लीचा मय चाँदनी पड़ा था। कहा जाता है यह कोई और न थे बल्कि बेगम हज़रत महल के बाप *अम्बर* ही थे।

बेगम अपने बेटे को लेकर पीनस में सवार हुई, चार संदूक़ अशरफ़ी और जवाहरे बेश से भरे हुए थे, पानदान और पिटारे साथ थे। हज़रत महल के कामदार नवाब मम्मू ख़ाँ ने जवाहर ख़ाने से निकालकर यही साथ कर दिया था बाकी उनके नाइब शरफुद्दौला को लेकर पीछे से पहुंचना था।

टीला शाह पीर जलील

सवारी सीधे पहुंची "टीला शाह पीर जलील"। कुछ मुरादु--मन्नत हुई और अब मौलवीगंज मे जवाहर अली ख़ां के घर उतरीं। वहां से सवार हुईं तो गुलाम रज़ा खां की कोठी पर ठहरीं, फिर शरफुद्दौला की हवेली में गईं। वहां से इमामबाड़ा हुसैनाबाद में तशरीफ़ लाईं। जानशीन के बोसे लिए और रात मे मिर्ज़ामण्डी में शाहजी की ड्योढ़ी मे ठहरीं।

अगले रोज़ शहर के नाके आलमबाग़ की तरफ़ रूख किया। मम्मू ख़ां ने घोड़े की रकाब में पैर रखा, मेंहदी अपनी अयाल से संग थे। अहमद हुसैन, हकीम हसन रज़ा साहब, कुछ तिलंगे सवार और बाक़ी पैदल सब साथ हो लिये।

आलमबाग़ से निकलकर सब के सब भरावन पहुंचे, राजा मदन सिंह ने एक चौपाल ठहरने को दिया और वह भी बमुश्किल तमाम--यहां तक कि खुद आने और मुलाक़ात करने तक की ज़हमत न की।

सफ़र के बाद सब के सब भूखे थे। बेगम और उनका

बेटा भी। लेकिन डयोढ़ी से पयाम आया कि जल्दी क्या है, जब खाना पक चुकेगा, भेज दिया जायेगा।

आँसू के घूँट पीकर रह गईं और वो भी क्रांति की मशाल बेगम हज़रत महल!

पूछने वालों ने इस बेरूख़ी की वजह दरियाफ़्त की तो जवाब मिला, "हम तुम्हे क्यों जगह दें और क्यों तुम्हारे शरीक हों, तुम हर जगह मिस्ले मेंढ़क उछलती फ़िरोगी और अंग्रेज मिस्ले साँप लहराते फिरेंगे।

और फिर बेगम के पैर उखड़ गये। औरइया सादामऊ के राजा नरपत सिंह जो बेगम के वफ़ादार थे, यहीं थे जो बाद में बहराइच की लड़ाई में उनकी तरफ से अंग्रेज़ों से भिड़ गये और उस पहली जंगे आज़ादी में अपनी जान गवां दी।

अब बेगम ने पश्चिम का इरादा छोडकर उत्तर की तरफ़ मुंह मोड़ा। लौट कर गोमती पार की और मड़ियांव छावनी के अंग्रेज़ी मोर्चे से महज़ नौ मील फ़ासले वाले कुर्मियो के गांव कठवारा में पड़ाव किया। कठवारे के पठान सरदार ने बेगम की मेहमान नवाज़ी ख़ूब अच्छी तरह की मगर बेगम को कठवारा आया हुआ जानकर अंग्रेज़ों ने कठवारे के सदर ख़ान बहादुर को क़ैद कर लिया और उसका इलाक़ा ज़ब्त कर लिया।

यह सज़ा दी वफ़ा शिआरों को और सबक़ औरों को। बेगम ने बाड़ी धानापुर पंडरिया होकर ख़ैराबाद की तरफ़ क़दम बढ़ाया।

ख़ैराबाद में मौलवी इमामुद्दीन उर्फ़ मौलवी नाज़िमे बिसवॉ बाड़ी ने ख़ैराबाद से तीन कोस आगे बेगम का एहतराम किया। बड़ी धूम से नक़्क़ारा निशान के साथ जुलूस किया। रास्ते में फ़कीरों में 2000 रुपये की ख़ैरात बांटी और फिर जब दाख़िले शहर हुईं तो तीन तोपों की सलामी हुई।

मौलवी ने मज़हबे इमामिया से वाबस्ता जानकर मिर्ज़ा बन्दीअली बेगम के इमामबाड़े में उतारा..... ख़ैराबाद रास आया मगर चैन कब था, दिल में जाने क्या समाई कि पूरब की तरफ़ मुंह किया और महमूदाबाद के लिए बढ़ीं।

खुदा मालूम कि बिसवाँ महमूदाबाद गईं भी या नहीं लेकिन सरफ़राज़ बेगम का ख़त बोलता है कि गई थीं जिनकी छोकरी यास्मीन भी उनके साथ थी।

महमूदाबाद रूकीं तो राजा नवाब अली ख़ां के क़िले मे ठहरीं..... राजा के नाइब ही तो थे ख़ान अली ख़ाँ जो 30 जून, 1857 को चिनहट की लड़ाई में हिन्दुस्तानी फ़ौज के कप्तान बनाये गये थे।

महमूदाबाद छोड़ा तो भिठौली की तरफ़ बढ़ीं। बहरामघाट के पास भिठौली में बेगम राजा मनवा की गढ़ी में रहीं। वह गुरूबख़्श सिंह रैकवार राजपूत का इलाका था, तब ही आ गये बेगम के ख़ास तरफ़दार बौंडी के महाराज हरदत्त सिंह सवाई, बडी मिन्नत और खुशामद के बाद बोले, "चलिए, बौंडी आपका घर है, यहां रहना मुनासिब नहीं भिठौली वाले अंग्रेज़ों के दोस्त हैं।

यह हमदर्दी आंखों में आंसू भर लाई फिर कुछ न

कहा और चलना मंजूर किया। ठाकुर हरदत्त सिंह की सरपरस्ती मे अवध का शाही काफ़िला कूच कर गया। भूँवरी मौज़ा मे पड़ाव किया और फिर बौंडी का रुख़ किया।

सन् 1858 के मार्च महीने में बेगम बौंडी (बहराइच) पहुचीं। ठाकुर हरदत्त सिंह की तरफ़ से ज़बरदस्त ख़ातिर तवाजे हुई, एक मुद्दत के वास्ते ठहराव हुआ। ठाकुर के बेटे महेश सिंह ने बिरजीस क़द्र को गले लगाकर अपना भाई बनाया।

धीरे–धीरे लखनऊ के सभी भागे हुए लोग बौंडी आ पहुचे। बौंडी में ऐसी चहलपहल जगी कि बारादरी के इर्द–गिर्द जैसे लखनऊ का चौक आबाद हो गया......मिर्ज़ा मोहम्मद हादी साहब रूस्वा अपनी किताब "उमराव जान अदा" मे जनाब आलिया के क़यामे बौडी के मुताल्लिक़ लिखते हैं:–

"बौंडी में चार दिनों के लिय ख़ूब चहल–पहल हो गई थी, लखनऊ के भागे हुए सब वहीं जमा हो गये थे। बौंडी बाज़ार बे ऐनिही लखनऊ का चौक बाज़ार मालूम होता था। बौंडी के रास्ते में अफ़सराने फ़ौज के ग़मज़े और बेगम साहब की खुशामद हमेशा यादगार रहेगी, एक साहब कहते हैं "लो साहब इन के राज में हम पैदल चले", दुसरे फ़रमाते हैं "भला खाने का इन्तेज़ाम तो दुरुस्त होता," तीसरे साहब अफ़ीम को पीट रहे हैं चौथे अपनी जान को रो रहे हैं, कि हुक्का वक़्त पर नहीं मिलता।"

मौलाना अब्दूल हलीम शरर अपनी तसनीफ़ गुज़शत लखनऊ में हज़रत महल की कारगुज़ारियों और ख़ूबी व

सिफ़ात के बारे में लिखते हैं :

"लोग हज़रत महल की मुस्तयदी व नेक नफ़्सी की तारीफ़ करते हैं, वह सिपाहियों की निहायत क़द्र करतीं और उनके काम और हौसले से ज़्यादा इनाम देतीं मगर इसका क्या इलाज कि ये मुमकिन न था के वह ख़ुद परदे से निकल कर फौज की सिपह सालारी करतीं, मुशीर अच्छे न थे और सिपाही काम के न थे, हर शख़्स ग़रज़ का बन्दा था कोई किसी का कहना न मानता था। अंग्रेज़ी फ़ौज के बानी इस धोके में थे कि यह फ़कत हमारे दम का ज़हूर है, अस्ल हाकिम हम ही हैं और जिस के सर पर जूता रख दें वही बादशाह हो जाए। 1857 ई० में जब कालिन कैम्बिल विलायत से रवाना हो कर मय लशकरे जर्रार लखनऊ पहुंचे क़ैसरबाग़, में ख़ूँ रेज मार्का शुरु होकर मख़तालियों के ख़ून से ज़मीन लालाज़ार होने लगी तो जनाबे आलिया की हिम्मत भी पस्त पड़ गई और अपनी कमज़ोरी महसूस करके 27 रजब बमुताबिक़ 21 मार्च बरोज़े यकशम्बा दीगर महलात ख़ाली कर के चली गईं। अगर उस रोज़ गोरा पलटन लूट खसूट में न पड़ जाती तो शायद जनाबे आलिया और बिरजीस क़द्र दोनों गिरफ़्तार हो जाते",

उसी फ़ज़ा में एक शाम गरां गुज़री, ख़बर मिली—लखनऊ मे बेगम के नाइब शरफुद्दौला का क़त्ल हो गया... बारादरी में कनीज़ों के साथ बैठकर गिरिया किया और माँ—बेटों ने दस्तर ख्वान की शिरकत नहीं की। कलेजे पर सांप लोट गये। अवध के कुल जां—निसारों ने बौंडी को अपना मरकज़े मंसूबा बना लिया, जनाबे आलिया के सीने में अंग्रेज़ों के वास्ते शोले एक

बार फिर भड़क उठे उन्होंने सबको मिला कर, दुश्मन से भिड़जाने का पक्का इरादा किया।

बेगम के साथ राजा हरदत्त सिंह, बैसवाड़े के राजा बेनीमाधव, रइया के राजा नरपत सिंह, फ़ीरोज़शाह और नाना साहब पेशवा ने मिलकर नया मोर्चा बनाया।

इस बीच अवध में मलिका विक्टोरिया (महारानी विक्टोरिया) का ऐलान आया और इसके जवाब में बेगम का मुंह तोड़ ऐलान जारी हुआ।

बहराइच इलाके में रहते हुए बेगम और बिरजीस कद्र द्वारा सिविल कमिश्नर मेजर बैरों से खत और दूतों से बात होती रही। मगर बेगम अंग्रेज़ों की ईमानदारी में बिल्कुल यकीन नहीं करती थीं।

राना बेनीमाधव घने जंगलों के बीच नानपारा के किले पर जंग में जूझ रहे थे। बेगम ने चहलारी से ठाकुर बलभद्र सिंह को भी तिलक कर के फ़िरंगियों के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए दूसरी तरफ़ भेजा, और वह शमए वतन का बेमिसाल परवाना शहीद हुआ।

कमाण्डर–इन–चीफ़ लार्ड क्लाइव को ये गरमा गर्म खबरें बराबर मिलती रहीं। नतीजा यह हुआ कि वो बौखलाया हुआ एक बड़ी फ़ौज लेकर बहराइच की तरफ़ से लड़ता हुआ आया। मालूम हुआ कि नाना साहब और राना बेनीमाधव 20 मील दूर राप्ती नदी के किनारे "बांकी" क़स्बे में हैं, और फिर क्लाइव की कुमक बौंडी आ धमकी—ग़रज़ यह कि वतन परस्तों

का यह मोर्चा 30 दिसम्बर, 1858 को टूट गया, और फिर वही गर्दिश की धूल घोड़ों की टापों से उड़कर बेगम के बालों पर बैठ गई। आख़िरकार बदनसीब बेगम ने जनवरी 1859 में बौंडी छोड़ दिया।

क़दम आगे बढ़े और तुलसीपुर जाने का इरादा किया।

तुलसीपुर (गोंडा)

बेगम उचवागढ़ी में दो दिन रहीं। तुलसीपुर (गोंडा) के राजा दुगराज सिंह अंग्रेज़ी हुकूमत की मुख़ालफ़त में शहर लखनऊ में एक साल तक नज़रबन्द रहे और आख़िरकार दिलकुशा में मर गये। यह कॉलिन कैम्बिल था, जिसने उन्हें कैद किया था और उनके बाद भी तुलसीपुर की रानी पर अंग्रेज़ों ने बड़े सितम किये थे।

बाद में बेगम के हिमायती गोंडा के राजा देवीबख़्श सिंह, जो घुटनों तक की लम्बी बाहों के कारण आजानुबाहु कहे जाते थे, अंग्रेज़ों के साथ लड़ते–लड़ते स्वर्ग सिधारे।

बेगम तराई के उस इलाक़े में अन्दर ही अन्दर टूटती रहीं और भटकती फिरीं। पहले देवीपाटन, सरबामर्ग और मास्वीदिया अंगूरकोट के ऊँचे–नीचे रास्ते तय किए फिर महादेवा पहाड़ और सोनार पर्वत पार करके नयाकोट पहुँचीं।

कुछ किताबें कहती हैं कि बेगम हज़रत महल जनवरी, 1859 में बरेली भी गई थीं और रूहेले नवाब ख़ांन बहादुर के यहां मेहमान हुई थीं। नवाब ख़ांन बहादुर पहली जंगे आज़ादी में शामिल थे। नवाब के तमाम हिन्दू–मुस्लिम राजाओं के साथ

ताल्लुकात थे उन्होंने अपना फ़ौजी दस्ता तैयार कर लेने के बाद नेपाल के राजा से भी मदद मांगी थी मगर राणा अंग्रेजो के ख़ैरख़्वाह थे, ग़रज़ यह कि साफ़ मुकर गये।

गोरों की दुश्मनी से यह नौबत भी आयी कि नेपाल नरेश ने ही रूहेले नवाब को पकड़वाकर अंग्रेज़ों के सुपुर्द कर दिया और फिर बरेली की पुरानी कोतवाली वाले चौराहे पर अंग्रेज़ों ने ख़ानबहादुर खा को माच 1860 में फांसी दे दी और उनके 257 सिपाहियों को भी बरगद के दरख़्त पर लटका कर मार डाला गया।

नयाकोट

यहां बेगम नवाब आसिफि उद्दौला वाली बारादरी मे पीनस से अकेली उतरी और फिर पीछे से बाकी लशकर आया।

27 फरवरी, 1859 को नेपाली कप्तान निरंजन मॉझी अपने राणा जंगबहादुर का ख़त लेकर बारादरी आसफ़ी मे आया जिसमें लिखा था :

"आप अंग्रेज़ों से मेल कर लें और इसी में अब आपकी बहबूदी है।"

बेगम की तरफ से नवाब अली मुहम्मद ख़ां उर्फ मम्मू खा (नसीरुद्दौला) ने जवाब में कहा :

"जनाब, न हमको आपकी मदद की ज़रूरत है औरं न हम अब अंग्रेज़ों से मेल करेंगे" और फिर महज़ इस साफ़ गोई और सख़्तबयानी ने मम्मू खां को बुरी से बुरी नौबत को पहुचा दिया।

अंग्रेजों ने धोखाधड़ी से मम्मू खां को बेगम के घेरे से अलग कर दिया और उस पर मुकदमा क़ायम कर दिया।

फ़ैसले में उसे कालेपानी की सज़ा देकर अण्डमान के टापू मे भेज दिया गया।

अब अवध की अधीश्वरी अपने शहज़ादे के साथ सरहदे अवध पर खड़ी थीं इसलिए उन दोनो को मुल्क मे वापस लाने के वास्ते अंग्रेज़ों ने बारहा कोशिश की लेकिन नाकाम रहे।

बिरजीस क़द्र के एक ख़त से ज़ाहिर है कि राणा जगबहादुर ने उन सब को अपनी सेना, राजाओं और ताल्लुक़ेदारों समेत चितवान चले जाने को कहा और फिर उनके साथ के लोग बिखर कर चितवान, बुटवल और नयाकोट में दुख झेलते रहे। यहां के गोरखे बेगम के सिपाहियों से बन्दूकें लेकर ही उन्हें खाने के लिए चावल दिया करते थे।

ज़ुल्म का पानी सर से ऊपर था—इसी सरहद की धारा पर बेगम के सारे साथी और आज़ादी के दीवाने एक—एक करके शहीद हुए। इलाक़ा ख़ूब हरा भरा था मगर मानिंदे मैदाने कर्बला था। इन्हीं सरहदी लड़ाईयों में राजा बेनीमाधव दबीर जगबहादुर शहीद हुए। बैंसवाड़े के जोगराज सिंह मारे गये नेपाल की सीमा—रेखा पर ही गोंडा के राजा देवीबख़्श, ख़ैराबाद के चकलेदार हरप्रसाद और बौंडी के ठाकुर हरदत्त सिंह की जानें गईं। नाना साहब के साथी अज़ीमुल्ला ख़ां बुटवल में मारे गये, बेरूआ के गुलाब सिंह यहीं मरे। यहां तक मशहूर है कि तराई के मलेरिया के कारण बाला साहब और नाना साहब की मौत भी यहीं हुई।

नेपाल में पनाह

नेपाल की सरहद में पनाह के लिए पांव रखने से पहले ही बेगम ने महाराजा नेपाल को तमाम हीरे, जवाहरात बतौर नज़राना भिजवा दिये और ये सब अच्छे तअल्लुक़ रखने की गरज़ से किया जा रहा था।

उस दिन बेगम को वो वक़्त भी याद आया जब जाने आलम से लार्ड डल्हौज़ी ने शाही महल में मुलाक़ात की थी। उस वक़्त बादशाह ने अवध की सरहद पर अंग्रेज़ी फ़ौज के इक्ट्ठा होने का सबब पूछा था तो रेज़ीडेंट ने जवाब दिया था, "नेपाल का राजा तीर्थयात्रा करने निकला है और उसकी हिफ़ाज़त के लिए ही ये इन्तज़ाम किया गया है।"

मन में हूक उठी और वह अपने दिल में खुद बेजार हुईं मगर करतीं क्या, लाचार थीं।

जब वह राजा नेपाल की राजधानी में उतरीं तो पहले अपने रहने के वास्ते एक मकान क़िस्त पर लिया... फिर काठमाण्डू से कुछ दूर "बर्फ़ बाग़" नाम से एक महल बनवाया शहर के बीच चौक में एक मस्जिद और इमामबाड़ा बनवाया अब तक हज़ारों हिन्दुस्तानी नेपाल में पनाह ले चुके थे। बेगम और उनके बेटे के लिए राजा नेपाल ने गुज़ारा बांध दिया था--पांच सौ रुपये माहवार।

इस तरह बड़ी बेचारगी के साथ मुसीबतों से भरी ज़िन्दगी के दिन कटे और फिर अंग्रेज़ों के दिल का काँटा, हजरत महल नाम का वो सुर्ख़ शोला, अप्रैल, 1879 में मुरझा गया।

बेगम अपनी ही मस्जिद के अहाते में वहीं दफ़्न हुईं। बिरजीस क़द्र ने ठीक ही लिखा है–

बुलबुल जो हूं हर ऐक गुले यासमीं से दूर,
बिरजीस हूं मगर बुते ज़ोहरा जबीं से दूर,
मिट्टी ख़राब हो गई नेपाल में तेरि,
रहता है क्यों मज़ारे इमामे मुबीं से दूर।।

आगे लिखते हैं–

हुकूमत जो अपनी थी, अब है पराई।
अजल की तलब थी, अजल भी न आई।।
ज़माना रखेगा पर अपनी नज़र में।
मेरि सरफ़रोशी मेरि ना रसाई।।
लिखा होगा हज़रत महल की लहद पर।
नसीबों जली थी, फ़लक की सताई।।

बेगम हज़रत महल की मृत्यु पर नेपाल सरकार का संन्देश भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के प्रशासनिक सचिव शिमला को काठमाण्डू से 24 अप्रैल 1879 को लिखा गया था। इस टेलीग्राम में लिखा गया है कि "11 तारीख़ के लिखे गये पत्र के सिलसिले में मैं आपको विदित कराना चाहूंगा कि यहां अवध की बेगम हज़रत महल का देहवासन 7 तारीख़ को हो गया है। वो एक सप्ताह से बुख़ार और दस्त से पीड़ित होकर बिस्तर पर पड़ी थीं, उस समय उनके बेटे बिरजीस क़द्र वहां उनके पास थे और जो अभी काठमाण्डू में ही हैं।"

विभिन्न दार्शनिकों के विचार :

कार्ल मार्कस कहते हैं "अवध की बेगम हज़रत महल ने हिन्दुस्तानी कौमी जद्दो—जहदे आज़ादी में 1857-59 तक मुजाहिदीन की कयादत की।"

(मास्को में प्रकाशित "फर्स्ट इंडियन वार आफ़ इन्डिपेन्डेन्स 1857-59)

सर डब्लू०एस० रसिल कहते हैं "बेगम ने सारे अवध को लडने पर आमादा कर लिया है और सरदारों ने वफ़ादारी का हलफ लिया है।"

वीर सावर कर कहते हैं "बाहिम्मत और क़ाबिले क़द्र बेगम साहिबा का वजूद इस क़दर अफ़रा तफ़री के सारे निजामे हुकूमत को बरक़रार रखना उन की लियाक़त का सुबूत है।"

सूचना विभाग भारत सरकारः—

"अवध के माज़ूल बादशाह की बड़ी बीवी हज़रत महल गैर मामूली—सलाहियत की ख़ातून थीं और आज़ादी की जददो—जहद मे उन्होंने नुमायां हिस्सा लिया। अपने कमसिन लडके बिरजीस कद्र को उस के बाप के जां नशीन की हैसियत से उन्होंने उसकी सरपरस्ती में हुकूमत के नज़्मों—नसक़ को सम्भाला। लखनऊ की मदाफ़िआना जंग में वह खुद शरीक हुईं और अपनी फ़ौजों में अकसर हरकत करती देखी गईं। अंग्रेज़ों ने जब अवध को दोबारा फ़तह किया तो उन्होंने नेपाल में पनाह ली और अपने लड़के के हुकूक़ से दस्त बरदार होने से साफ इनकार कर दिया।"

अंग्रेज़ों की सर परस्त फ़ररूख़ महल— "मैं नहीं समझती थी कि

हज़रत महल ऐसी आफ़त की परकाली है। खुद हाथी पर बैठ कर तिलंगों के आगे–आगे फ़िरंगियों का मुक़ाबला करती है। आंख का पानी ढल गया है।"

शैदा बेगम बनाम वाजिद अली शाह :

"हज़रत महल ने ऐसी बहादुरी दिखाई कि दुश्मन के मुंह फिर फिर गये। बड़ी जीदार औरत निकली, सुलताने आलम का नाम कर गई कि जिसकी औरत ऐसी हो जो मर्दानावार मुक़ाबला करे तो उसका मर्द कैसा बहादुर और शुजा होगा।"



REVOLUTIONARIES AT DIFFERENT PLACES

44. H.B. Godall, Mainpuri, to E.A. Reade, Agra. Dated 8th December, 1858.

I gleam the following from two messages dated 7th received this morning from Meerun ka Sarie[Sarai].Three Companys (sic) European & four companys (sic) Police Battalion sowars or near (sic) 150 Infantry arrived at Eroul on the 6th. The Rebels had all left. Troops were in pursuit at 9 A.M.yesterday. Share started to join them in afternoon the wire is being received at Eroul. The rebels had burnt Eroul & Luckerpore & gone south Khoga Nugger [Nagar] six miles south of Tirwa[24] ten miles west of Luckerpore also said to have been plundered. Report says that Tantia Topee has arrived at Russoolabad. Hennesey & Alexander go to Luckerpore this morning.Another message dated today says that the rebels are at Russoolabad in Cawnpore & at Asim Beylas in Etawah district they are making for Shahyedoor.

BEGAM HAZRATMAHAL ESCAPES TO NEPAL

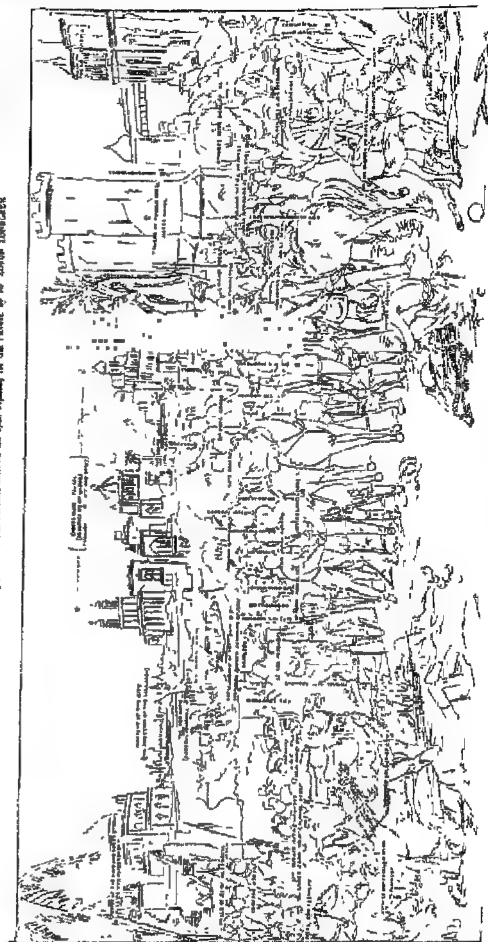
45. The Chief Commissioner, Lucknow to the Lt. Governor, Punjab, G.Batten, Judge & E A. Reade [Punjab, Kanpur & Agra]. Dated [illegible]th January, 1859.

The rebellion in Oude is entirely suppressed The Begum and some followers with guns have gone by night marches into Nepaul [Nepal] partly forcing her way partly bribing sepoys. [illegible]

म्युटिनी टेलीग्राम्स 1859 पृष्ठ 14
(Mutiny Telegrams-1859) Page 14

NU	Name of the Tahs…	Name o… village … free hold…	Quantity of … / Mature of Fraction / Numbe… of we…		Name of	Date o	Name o… grantee …	…	Name o… present … father's nam… relations…				
1	MOHANLAL	MAHUDINAGGAR	Retm TEG ocris 55 w'lls	R A P 1 80 000	Wajid Shah	2-6 Fusli AD 1840	Hazrat Hind one of the wives of the Ex King	This is the notorious Rebel Begum who has persisted in remaining absent. She has one son Bres Kud 13, years old, who is with her. The case was not decided in 1204 F. The village has been settled with Zamindars and the proceeds held in deposit. The Canongoes, Zamindars & ctc that the Begum used to hold Kham	Absconded the Begum is the daughter of "Umber" a slave of Gulam Hossein Ali Khan and her mother was Mohei Jifza Khawas of the same person	The Chief Commissioner has declared this maafi to be confiscated, for continued rebellion in his Secretary's letter No. 12b7 dated 21st June paragraph 3 but the statement is now submitted with others to prevent mistakes and to have things regular (Sd) P Carnegy Deputy Commissr	To be resumed and deposit carried to credit of Government (Sd) A H Abbott Commis of Suptt The 20th September	Sanction of Government to the confiscation of this tenancy solicited (Sd) C Wingfield Chief Commissioner Oudh The 14th March 1860	

Mafi or Rent -free holdings in which … on has been completed in District of Lucknow No. 193



लखनऊ में चल रहे सन् 1857 के भीषण स्वतंत्रता ग्रेजी फ़ौज की मदद के लिए ब्रिटिश सेना के हिन्दुस्तान नापति सर कॉलिन कैम्बिल को कलकत्ता से लखनऊ भेजा

हेनरी हैवलक और जेम्स आउटरम की सेना के साथ म्बिल की फ़ौजें 17 नवम्बर, 1857 को मोतीमहल की चहा कोने पर मिलीं।

उस यादगार मुलाक़ात का पत्थर आज भी उस ा हुआ है इस भेंट ने युद्ध का इतिहास ही बदल कर रख

मिर्ज़ा रमज़ान अली, नवाब बिरजीस क़द्र बहादुर (7 जूलाई, 1857 – 16 मार्च, 1858)

वाजिद अली शाह और उनकी बेगम हज़रत महल के शहज़ादे नवाब बिरजीस क़द्र का जन्म सन् 1845 ईसवी अर्थात 1261 हिजरी में लखनऊ के हुज़ूरबाग़ में स्थित नगीने वाली बारादरी में हुआ था। उस समय बादशाह अमजद अली शाह अवध की सल्तनत पर विराजमान थे। पौत्र के जन्म के समाचार से वह इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने बालक के सम्मान मे ग्यारह तोपों की सलामी दिलवाई। वाजिद अली शाह ने अपनी ओर से नाच–गाने की एक विशेष महफ़िल सजवाई जिसमें नृत्य कला का बहुत सुन्दर प्रदर्शन लोगों के मनोरंजन हेतु प्रस्तुत किया गया। लखनऊ शहर में किसी शहज़ादे के जन्म पर इतनी अधिक धूमधाम नहीं हुई थी जितनी कि इस बालक के जन्म पर हुई। ऐन रमज़ान के महीने में जन्म होने के कारण उनका नाम पहले मिर्ज़ा रमज़ान अली रखा गया। बाद में उनके दादा हज़रत अमजद अली शाह ने उन्हें "बिरजीस क़द्र बहादुर" नाम दिया। बालक का पालन–पोषण बड़े लाड–प्यार से किया गया और मौलवी गुलाम हज़रत उन्हें शिक्षा देने के लिए नियुक्त किए गए। जब बिरजीस क़द्र 11 वर्ष के हुए तो 7 फ़रवरी, 1856 को उनके पिता बादशाह वाजिद अली शाह अंग्रेज़ों द्वारा अपदस्थ कर दिए गए और अवध को अंग्रेज़ी राज्य मे मिला लिया गया। कम्पनी ने जनरल आउटरम को अवध का चीफ़ कमिश्नर नियुक्त किया। कुछ समय बाद वह सर हेनरी लॉरेन्स को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करके अवध से वापस

चला गया।

सन् 1857 में अवध ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत में अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करने की योजना बनाई गई। 10 मई, 1857 की रात को मेरठ में यह विद्रोह प्रारम्भ हुआ। 14 मई को जब यह समाचार लखनऊ पहुंचा तो यहां के लोग भी उत्तेजित हो उठे। 30 मई को रात 9 बजे लखनऊ में भी सैनिक विद्रोह प्रारम्भ हो गया। शीघ्र ही वह सम्पूर्ण अवध मे छा गया। लखनऊ में इस विद्रोह का नेतृत्व बेगम हज़रत महल कर रही थीं। उनकी सेना के कमाण्डर जनरल बरकत अहमद थे। 29 जून, 1857 को नवाबी सेना तथा अंग्रेज़ी सेना के बीच लखनऊ के पूर्व चिनहट में एक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेज़ी सेना बुरी तरह से पराजित हुई।

अंग्रेज़ों को परास्त करके क्रान्तिकारियों ने 7 जुलाई, 1857 की शाम को चाँदी वाली बारादरी में नवाब बिरजीस कद्र की ताजपोशी कर दी। स्वदेशी सेनाओं के कमाण्डर जनरल बरकत अहमद ने बिरजीस क़द्र को ताज पहनाया। बिरजीस क़द्र की मॉ तथा संरक्षिका बेगम हज़रत महल को "जनाब आ़लिया" का ख़िताब मिला। इस खुशी में 21 तोपों की सलामी दी गयी और राजओं व रईसों ने बेशक़ीमत तलवारे नज्र में दीं। इस दरबार में राजा जयपाल सिंह युद्ध मंत्री बने। बेगम के कामदार अली मुहम्मद ख़ां उर्फ़ मम्मू ख़ां नसीरुद्दौला को मुख्य न्यायधीश का पद मिला, शरफ़ुद्दौला वज़ीर बने, राजा बालकृष्ण को वित्तीय विभाग सौंपा गया, नवाब इब्राहीम दीवान हुए और सलतनत की संरक्षिका बेगम हज़रत महल हुईं।

बिरजीस क़द्र के नाम का सिक्का, उसकी हुक्मे शाही की मोहरें बनीं और फ़ौज में तेरह नई पल्टनों को भर्ती किये जाने का हुक्म हुआ। इसके बाद नवाबी सेना तथा अंग्रेजी सेना के बीच रेजीडेन्सी में जमकर दो बार युद्ध हुआ, पहली बार 20 जुलाई तथा दूसरी बार 10 अगस्त को। पहली बार नवाबी सेना विजयी हुई और दूसरी बार अंग्रेज़ों का पलड़ा भारी रहा। इसके बाद 25 सितम्बर को आलमबाग़ का युद्ध हुआ जिसमें जनरल हैवलॉक के नेतृत्व में अंग्रेज़ी सेना ने नवाबी सेना को हराया। 16 नवम्बर, 1857 को सरकॉलिन कैम्बिल के नेतृत्व में अग्रेज़ी सेना तथा नवाबी सेना के बीच सिकन्दरबाग़ में युद्ध हुआ जिसमें नवाबी सेना को भीष्ण पराजय का मुंह देखना पडा। इसके बाद भी लखनऊ में मार्च, 1858 तक स्वाधीनता का युद्ध जारी रहा। अन्त में 6 मार्च, 1858 को उत्तर से आउटरम तथा दक्षिण से कैम्बिल ने क्रांतिकारी सेनाओं पर आक्रमण किया। 6 मार्च, 1858 तक दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। अन्त में अंग्रेज़ी सेनाओं को विजय मिली। 16 मार्च को बेगम हज़रत महल तथा नवाब बिरजीस क़द्र लखनऊ से पलायन कर गये। लखनऊ से मिटावली, शाहजहाँपुर, बरेली होते हुए यह लोग घाघरा नदी के किनारे चौका घाट पर एकत्र हुए। 13 जून, 1858 को सेनापति [illegible] के नेतृत्व में एक सेना की टुकड़ी ने अचानक चौकाघाट पर आक्रमण कर दिया। बेगम हज़रत महल ने नवाब बिरजीस क़द्र के साथ भँउरी होते हुए बौंडी (बहराइच) में राजा हरदत्त के यहां शरण ली।

1 नवम्बर, सन् 1858 ई. को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने

एक क़ानून पास कर, भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से छीन कर, अपने हाथ में ले लिया और भारत पर मलिका विक्टोरिया का साम्राज्य स्थापित कर दिया गया। महारानी विक्टोरिया ने कम्पनी के राज्य को समाप्त घोषित करते हुए सभी लोगों को शान्तिपूर्वक ब्रिटेन के अधीन रहने का अनुरोध किया। मलिका की यह घोषणा, गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग ने इलाहाबाद के क़िले से प्रसारित की कि कम्पनी का राज्य अब समाप्त हुआ और उसके स्थान पर भारत के शासन की बागडोर मलिका विक्टोरिया ने अपने हाथों में ले ली है। सिवाय उन लोगों के जो अंग्रेज़ों की हत्या में भाग लेने के अपराधी हैं, बाक़ी जो लोग हथियार रख देंगे, उन सब को माफ कर दिया जायेगा। देशी नरेशों के साथ कम्पनी ने इस समय तक जितनी संधियाँ की हैं, उन सब का ईमानदारी से पालन किया जायेगा। उस समय लॉर्ड कैनिंग भारत के प्रथम अंग्रेज वाइसरॉय नियुक्त किए गए।

मलिका विक्टोरिया की घोषणा के प्रत्युत्तर में बेगम हजरत महल ने एक जवाबी घोषणा करते हुए मलका की घोषणा को भ्रमपूर्ण तथा धोखाधड़ी बताया। उन्होंने अवध की जनता से अपील की कि वे एकजुट होकर अवध से अंग्रेज़ों को बाहर निकाल दें। बेगम की इस घोषणा के बाद भी 6 माह तक युद्ध होता रहा, किन्तु क्रांतिकारियों को कोई सफलता न मिल सकी। सन् 1859 तक अंग्रेज़ों ने अवध के बचे हुए क्रांतिकारियों को नेपाल की सीमा के उस पार तक खदेड़ दिया। बेगम हजरत महल ने नौ जनवरी 1859 में ही बौंडी छोड़कर

तुलसीपुर की उचवागढ़ी में शरण ले ली थी।

अन्त में नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में प्रवेश करने पर बेगम हज़रत महल ने जब नेपाल के राजा जंग बहादुर से उनके यहाँ शरण की याचना की, तो पहले तो उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया बल्कि उन्होंने, उनको अंग्रेज़ों से मेल करने की सलाह दी, परन्तु बाद में उन्होंने बेगम को अपने यहाँ शरण देना स्वीकार कर लिया।

बेगम हज़रत महल ने काठमाण्डू में एक मकान किराए पर ले लिया और वह उसी में रहने लगीं। उनके साथ उनके एक क्रांतिकारी साथी मिर्ज़ा दाऊद बेग भी थे जिनकी पुत्री मुख्तारुन्निसा के साथ सन् 1859 में बिरजीस क़द्र की शादी हुई। ससुराल में बहू को "मेहताब आरा" का ख़िताब मिला।

21 सितम्बर, 1887 को वाजिद अली शाह की मृत्यु होने के बाद अंग्रेज़ सरकार की अनुमति से मिर्ज़ा बिरजीस क़द्र अपने परिवार के साथ कलकत्ता चले गए। उनके साथ उनकी पत्नी मेहताब आरा, 18 वर्षीय पुत्री जमाल आरा, 14 वर्षीय पुत्र खुर्शीद क़द्र तथा एक 12 वर्षीय पुत्री हुस्न आरा भी थीं। अंग्रेज सरकार ने उन्हें सदर स्ट्रीट वाले मेहमान ख़ाने में रखा। वहाँ से वह अपने चचेरे भाई मिर्ज़ा जहाँक़द्र के अनुरोध पर अ़ताबाग (मटिया बुर्ज) में रहने के लिए गए।

कलकत्ता पहुंच कर नवाब बिरजीस क़द्र अपने पिता वाजिद अली शाह की पेंशन तथा अपने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में अंग्रेज़ सरकार से पत्र व्यवहार कर ही रहे थे कि उनके परिवार में ही उनके विरुद्ध उनके कुछ शत्रुओं ने एक षड्यंत्र

की रचना की। 13 अगस्त सन् 1893 ई. को एक दावत मे बुलाकर उन्हें, उनकी बड़ी पुत्री जमाल आरा तथा बेटे खुर्शीद कद्र को विषैला भोजन खिला कर मार डाला गया। वह विषैला भोजन उनकी पत्नी मेहताब आरा को भी भेजा गया जो गर्भवती होने के कारण दावत में शरीक न हो सकी थीं। माँ को अकेली देख कर छोटी बेटी हुस्न आरा भी घर पर ही रुक गयी थी, किन्तु इन दोनों ने उस भोजन को छुआ तक नहीं, अतः वह जीवित बच गईं। बिरजीस क़द्र के शव को मटियाबुर्ज के सिब्तैनाबाद इमामबाड़े में दफ़्न कर दिया गया।

27 दिसम्बर, 1893 ई० को बेगम मेहताब आरा के गर्भ से मिर्ज़ा ज़ाहिद अली "मेहर क़द्र" का जन्म हुआ। उनके तीन पुत्र मिर्ज़ा रोशन अली "अंजुम क़द्र", मिर्ज़ा सज्जाद अली "कौकब क़द्र" तथा मिर्ज़ा नासिफ़ अली "नैय्यर क़द्र" हुए। बिरजीस क़द्र की छोटी पुत्री हुस्न आरा बेगम का देहान्त 1949 में मटिया बुर्ज, कलकत्ते में ही हुआ। बुधवार 23 जुलाई सन् 1997 ई० को 76 वर्ष की अवस्था में मिर्ज़ा अंजुम क़द्र का दिल्ली में हृदय गति रुक जाने से देहान्त हो गया। शुक्रवार 25 जुलाई 1997 को उनका शव मटियाबुर्ज के सिब्तैनाबाद इमामबाड़े में उनके पिता जनाब मेहरक़द्र की क़ब्र के बगल में दफ़्ना दिया गया।



बेगम हज़रतमहल पार्क

"बेगम हज़रतमहल पार्क" का नाम पूर्व में कैसरबाग विक्टोरिया पार्क था, और यहां पर मलिका विक्टोरिया का शाही मुजस्सिमा था उसे म्युज़ियम में भेज दिया गया।

बेगम हज़रतमहल पार्क लखनऊ का नाम 1962 मे प्रिन्स अनजुम क़द्र के भाई प्रिन्स नय्यर क़द्र जो अब लन्दन मे रहते हैं, की कोशिशों से रखा गया था। नय्यर साहब के प्रयत्नो पर, उस समय हाफ़िज़ मोहम्मद इब्राहीम जो सिंचाई विभाग में वजीर थे, उन्होंने पंडित जवाहर लाल नेहरू को 1857 का इतिहास उन पहलुओं से विदित कराया जो कैसरबाग़ से सम्बिन्धित थे। उसके बाद पंडित नेहरू ने "कैसरबाग़ विक्टोरिया पार्क" का नाम बदल कर "बेगम हज़रतमहल पार्क" रखा। मलिका विक्टोरिया का मुजस्सिमा हटाकर वहां पर बेगम हजरतमहल का मुजस्सिमा लगाने का आदेश जिस पर 50 हजार रुपए स्वीकृत हुए, उस समय सी०बी० गुप्ता मुख्यमन्त्री थे लेकिन प्रिन्स अनजुम क़द्र और प्रिन्स नय्यर के विरोध से वह नहीं लगाया गया क्योंकि इस्लामी क़ानून में औरत का मुजस्सिमा लगाना उचित नहीं था। यह प्रस्ताव बदल दिया गया और हज़रतमहल की मुहर और कत्बः छतरी के नीचे सगे मरमर के सितून (खम्बों) पर तांबे की तखतियों पर कंदः (खुदवाकर) कर के लगा दिया गया और पूरे पार्क का नाम "बेगम हजरतमहल पार्क" रख कर भारत सरकार के आरक्योलोजी

विभाग को दे दिया गया। इस विभाग ने जनता की जानकारी के लिये नीली तख़्ती पर सूचना लगा दी।

मलिका विक्टोरिया के नाम से एक और विक्टोरिया पार्क गोल दरवाज़े के सामने लखनऊ ही में है और इस समय भी मौजूद है। यह विवाद भी पैदा हुआ कि जब चौक वाला विक्टोरिया पार्क सुरक्षित रखा गया है तो यह क़ैसरबाग़ वाले पार्क के नाम का परिवर्तन क्यों ज़रूरी समझा गया। सच बात तो यह है कि क़ैसरबाग़ का पार्क 1857 की जंगे आज़ादी की दास्तानों से भरा हुआ है। यहां के कण–कण में हिन्दुस्तानी सिपाहियों और जांबाजों की दास्तानें छुपी हुई हैं इसी मैदाने जग में हिन्दुस्तानी मलिका हज़रतमहल ने विदेशी मलिका विक्टोरिया की फ़िरंगी फ़ौजों को हराकर लखनऊ और अवध की हुकूमत दोबारा हासिल की थी।

इसी मैदाने जंग में ब्रिटिश कमांडर–इन–चीफ़ जनरल नील को घोड़े की पीठ पर सवार, शेर दरवाज़े से दाग़े गये तोप के गोले से उड़ा दिया गया था। नील वहीं ढेर हो गया मगर उसका जख़्मी घोड़ा दूर जाकर गिरा और वहीं दफ़्न किया गया जहां पर अब प्रेस क्लब है। जनरल नील के क़त्ल के मकाम पर अंग्रेज़ों का लगा हुआ एक कत्बः मौजूद है।

इसी मैदाने जंग में बेगम की हिन्दुस्तानी फ़ौजों से फिरंगी फौजें हार कर मरती मारती, भाग कर रेज़ीडेंसी में छुप गयी थीं।

इसी मैदाने जंग में हज़रतबाग़ के अंदर चांदी वाली बारादरी में हज़रतमहल के बेटे बिरजीस क़द्र की ताजपोशी हुई

थी और इनका जुलूसे ताजपोशी भी इसी मैदान से शादियाने बजाता हुआ गुजरा था।

इसी मैदाने जंग के किनारे चार आलीशान कोठियों का झुरमुट है जो चौलक्खी कहलाता था जो बेगम हज़रत महल का निवास था और 1857 में वह यहां दरबार भी करती थीं।

ताजपोशी के बाद छः बड़े अंग्रेज़ अफ़सर कैदियों का मुकदमा बेगम हज़रत महल की फ़ौजी कौसिंल ने इसी मैदाने जग के अंदर चौलक्खी में समाप्त किया। यहीं पर सज़ाये मौत का आदेश सुनाया गया जिसकी फ़ौरन तामील हुई। बेगम हजरत महल के हुक्म से वह छः लाशें एक मुशतरिका क़ब्र में ईसाई तरीक़े से दफ्नाई गईं और इस पर एक सलीब भी नस्ब की गई। वह क़ब्र मौजूदा तुलसी सिनेमा के सामने आज भी मौजूद है जिस पर अंग्रेज़ी दौर में संगेमरमर का कत्बः लगाया गया था जिस पर नाम लिखे हैं। ब यादे सरमाउन्ट स्टोरट जैक्सन बारट कैप्टन पैरिक आर लैफ़टिनेन्ट बिरनेस सार्जेन्ट मेजर मॉर्टन जी.पी. कारयू और एम.जैक्सन 1857।

दस माह बाद काया पलट हुई तो अंग्रेज़ी फ़ौजों ने भी इसी मैदाने जंग में हजरतमहल को शिकस्त दी। पांच हज़ार वफादार हिन्दू और मुस्लिम मुजाहिदीने जंगे आज़ादी इसी मैदाने कारज़ार में अपनी जानें वतन पर निसार करके तारीख़ बना गये एक भी फ़रार न हुआ।

यह वही मैदान है जहां खुद बेगम हज़रतमहल मुल्क

को अंग्रेज़ों के नापाक हाथों से आज़ाद कराने और जामे शहादत नोश करने के जज़्बे से परदे से बाहर निकल आई थीं, पर ठीक उसी समय पर मौलाना अहमद उल्ला शाह दो हजार जाबाज़ों को लेकर अंग्रेजों का घेराव तोड़ कर घुस आये। बेगम और बिरजीस क़द्र को निहायत हिम्मत से बचा ले गये। इसी मौके पर हज़रतमहल ने कहा था कि "मैं जानती हूं कि जंग हार गई हूं। मैं यहीं मैदाने जंग में जान दे दूंगी लेकिन चौलक्खी छोडूंगी नहीं।"

इसी मैदाने जंग में फ़तह के बाद फिरंगियों ने अपने दो क़ैदियों को फांसी दी और मुसलमान की लाश को जलाकर और हिन्दू राजा जियालाल को न सिर्फ़ दफ़्न कर दिया बल्कि निशाने क़ब्र भी मिटाकर अपने मज़ालिम का इज़हार किया। फिरंगियों ने अपने जासूसों एवं गुप्तचरों की सहायता पाकर 1857 की जंग की फ्तह के बाद अवध के तख़्ते लखनऊ के इसी तारीख़ी मैदाने जंग का नाम अपनी अंग्रेज़ मलिका के नाम पर कैसरबाग विक्टोरिया पार्क रखा और इस पर आलीशान मुजस्समा नस्ब किया था लेकिन मुल्क के पहले वज़ीरे आजम को उसकी तारीख़ी अहमियत की तरफ़ जैसे ही मुतवज्जे किया गया उन्होंने उसे हटवा कर म्यूज़ियम में भिजवा दिया और इसी तारीख़ी मैदाने जंग का नाम बदल कर बेगम हज़रतमहल पार्क रखा, इसी के बाद हम लोगों की तहरीक पर हुकूमत उत्तर प्रदेश ने बेगम हजरतमहल पार्क का वह टुकड़ा जहां

रतमहल के जंगजू राजा जियालाल कत्ल करके मदफून

कर दिये गये थे, राजा जियालाल पार्क रख कर और एक तख्ती पर लिख कर इस बहादुर और वतन परस्त राजा के नाम को भी शोहरते दवाम दे दी।

यह पार्क कैसरबाग़ के शाही महलात की आराज़ी होने के सबब ख़ानदाने शाहे अवध की मिलकियत था। 1962 ई० मे यही सूरते हाल थी, अवध के आख़िरी हुक्मरां के हक़ से वह जमीन हज़रतमहल की मिलकियत थी।

यह बेगम हज़रतमहल का मैदाने जंग था जिस पर मौसूफ़ा ने अंग्रेज़ों से लड़ाइयां लड़ीं, जीतीं और हारीं।

इस मैदाने जंग में ब्रिटिश कमांडर–इन–चीफ जनरल नील के क़त्ल की जगह के निशान वहीं है। फ़िरंगी फ़ौजी कैदियों की क़ब्र है और बेगम हज़रतमहल के वज़ीरे जंग राजा जियालाल की भी समाधि है और इस तरह फिरंगियों की कम जरफ़ी का मुस्तकिल मुज़ाहरा भी है। यहां आज़ाद हिंद फ़ौज के कमांडर इन चीफ नेताजी सुभाष चंद्र बोस का जंगी मुजस्सिमा भी लगा हुआ है।

इसी मैदाने जंग में चारों तरफ़ अठारह सौ सत्तावन की जंगी कार्रवाइयों की निशानियां और तारीख़ी गवाही मौजूद है। ताजपोशी, जंगी कौंसिल के दरबार, नामवर अंग्रेज़ और हिंदुस्तानी जंगी कैदियों पर सज़ाऐ मौत की तामील गोया उन तमाम तारीख़ी हक़ाइक़ की दास्तानें यहां पोशीदा हैं, जिसके अध्यन से हमारी नई नस्लें अपने मुल्क की अजमत और क़ौम के लिये कुर्बानी पेश करने के कारनामों से बख़ूबी वाकिफ़ हो

सकती हैं। इन तमाम बातों से वाक़िफ़ होने के बाद न तो किसी को इस की तारीख़ी अहमियत से इन्कार हो सकता है न किसी को यह पसंद होगा कि हज़रतमहल पार्क का नाम तब्दील कर दिया जाये।

बेगम हज़रतमहल के माने हुए कारनामों के मद्देनजर उनके नाम की बेशुमार यादगारें मुखतलिफ़ तरीक़ों की सारे मुल्क में क़ाइम होना चाहिये थीं मगर दुनिया में सिर्फ़ यही एक बेगम हजरतमहल पार्क है जो उनकी अकेली यादगार है। जिससे मौसूफ़ा का नाम ज़िन्दा जावेद है और रोज़ दुनिया के अखबारों में यह नाम छपता है।

आज भी राजनीतिक संगठन अपने प्रदर्शन और बैठकें यहीं बुलाते हैं। दशहरे में रावण यहीं फूंका जाता है। लखनऊ महोत्सव 1999 तक यहीं सजकर शहर की रौनक़ बढ़ाता था। मगर कोर्ट द्वारा आदेश पारित हुआ कि बेगम हज़रतमहल पार्क में लखनऊ महोत्सव न मनाया जाय, चुनांचे अब हज़रतमहल पार्क लखनऊ महोत्सव से हमेशा को महरूम रहेगा।



संदर्भ

1- शेख़ तसद्दुक़ हुसैन, बेगमाते अवध, लखनऊ : किताब नगर, दीनदयाल रोड लखनऊ, एन०डी०। (उर्दू)

2- मौलाना अब्दुल हलीम 'शरर', गुजश्तः लखनऊ, भुवन वाणी ट्रस्ट मौसमबाग़ : द्वितीय संस्करण, 1990

3- विलायत जाफ़री, दहकता अवध : सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम की कुछ दास्तान : दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार 1990।

4- आशारानी वोहरा, भारत की अग्रणी महिलाऐं दिल्ली, राजपाल, 1975।

5- प्रकाशन विभाग सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत के नारी रत्न, भारत सरकार : 1983।

6- योगेश प्रवीन, ताजदारे अवध, लखनऊ, भारत बुक सेन्टर : 1998।

7- वाजिद अली शाह नवाब, "सुख़ने अशरफ़" सम्पादन नैयर मसूद, लखनऊ।

8- आशारानी वोहरा, महिलाएं और स्वराज्य, दिल्ली, प्रकाशन विभाग, 1998।

9- बाला दुबे, अनजानी वीरांगनाएं :दिल्ली प्रभात प्रकाशन : 1984

10- नुसरत नाहीद, भारतीय मुस्लिम वीरांगनाएं, लखनऊ नुसरत नाहीद : 1999

11- अमीरुदौला पब्लिक लाईब्रेरी में उपलब्ध मैप, 1857

12- योगेश प्रवीन, गुलिस्ताने अवध, लखनऊ, भारत बुक सेन्टर, 1999।
13- नजमुलग़नी ख़ां, तारीखे अवध, लखनऊ: नवल किशोर प्रेस, 1919 (उर्दू) भाग चार।
14- कौकब क़द्र सज्जाद अली मिर्ज़ा, वाजिद अली शाह की अदबी और सक़ाफ़ती ख़िदमात, दिल्ली, तरक्की उर्दू ब्यूरो 1995 (उर्दू)
15- नया दौर : लखनऊ : सूचना विभाग उ.प्र., अक्टूबर, नवम्बर 1994, अवध नम्बर भाग 2 (उर्दू)
16- वाजिद अली शाह, शेव–ए–फ़ैज़, 1272हि०, कुल्लियाते नज़्म।
17- राजकीय अभिलेखागार, उ०प्र०, Register of Mafi or Rent free holdings in which investigation has been completed in District of Lucknow No. 193.
18- राजकीय अभिलेखागार, उ०प्र०, Mutiny telegrams 1859 page 14.





" जाने आलम वाजिद अली शाह हरम में "

अगले पृष्ठ के सम्बन्ध में अवगत करा दूं कि यह पुस्तक अमीरूद्दौला पब्लिक लाईब्रेरी में उपलब्ध है, खसता हालत है। इसमे कुल 6 चित्र हैं, जिन्हें 1856 में जब मलिका किश्वर अपना मुकदमा ब्रिटिश सरकार के समक्ष लेकर गईं थीं, उस समय उन के साथ उनके कर्मचारी भी थे, किसी महिला ने उनके रंगीन चित्र इस पुस्तक में इकट्ठा किये थे। मैनें चित्रकार श्री तसनीम ग़लिब द्वारा इसका स्केच बनवाया है।

THE KING OF OUDE,

HIS BROTHER,

AND ATTENDANTS.

ETCHED WHILE ON THEIR VISIT TO ENGLAND,

BY A LADY.

LONDON:
ACKERMANN AND CO.
BY APPOINTMENT TO H. M. THE QUEEN, H. R. H. PR...
H. R. H. THE DUCHESS OF KENT, AND THE RO...

TITLE OF THE BOOK



GATEMAN



ATTENDANT





INTERPRETER.



BRAHMIN



BRAHMIN



THE COOK